योग-वेदान्त

वर्ष : २८

जुलाई : १९७८

अङ्क : ७

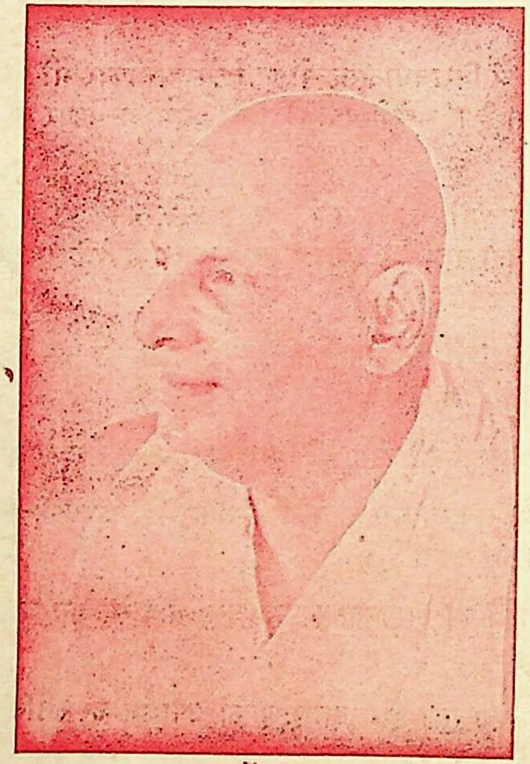

बिन्दु में सिन्धु

'आवास की श्रेष्ठता स्थान की उपयुक्तता में होती है; मन की श्रेष्ठता उसकी अतल निस्तब्धता में; संसर्ग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में; शासन की श्रेष्ठता सुव्यवस्था में; कार्य-पद्धति की श्रेष्ठता कर्म की कुशलता में; और किसी आन्दोलन के सूत्रपात की श्रेष्ठता उसकी सामयिकता में है।'

—लाओत्से

'ईश्वर कभी बहरा नहीं होता, वह तभी बहरा होता है जब आदमी का दिल ही गूँगा हो जाए।'

—क्वार्ल्स

'जरा और मरण के तेज प्रवाह में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है।'

—महावीर

'जैसे ही मृत्यु चेतन बनती है, वैसे ही धर्म का जन्म होता है। जैसे ही यह प्रतीति साफ हो जाती है कि मृत्यु निश्चित है, वैसे ही जीवन का सारा अर्थ बदल जाता है; क्योंकि अगर मृत्यु निश्चित है तो फिर जीवन की जिन क्षुद्रताओं में हम जीते हैं, उनका सारा अर्थ खो जाता है।'

—आचार्य रजनीश

'गुफा में विराजमान सहस्रों वर्षों का अन्धकार भी दीये की नन्हीं-सी लौ के प्रविष्ट होते ही भाग खड़ा होता है। सहस्रों वर्षों से रहते आये अन्धकार को गुफा से निकलने में सहस्रों वर्ष नहीं लगते।'

—विनोबा

'जो आदमी बहुत कम बोलता है और समय पर बोले गये एक ही संयत शब्द से किसी वाचाल की बोलती बन्द कर देता है, वह वास्तव में प्रतिभाशाली व्यक्ति या नायक है।'

—लैवेतर

'क्रोध-सहित दिया गया अमित दान भी कुछ नहीं है, जबकि मुस्कान-सहित दिया गया रत्ती भर दान भी बहुत कुछ है।'

—स्वामी शिवानन्द

'प्रेम का एक ही काम है—बुराई को भलाई से जीतना।'

—विलियम लॉ

'उद्यम, साहस, धीरज, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम—ये छः गुण जिसमें रहते हैं, उसी की परमेश्वर सहायता करता है।'

—व्यास

'आदमी की महानता का पता इस बात से लग जाता है कि वह अपने छोटों से किस तरह पेश आता है।'

—कार्लाइल

'क्षमा एक गुण है। इस गुण का उपार्जन कर लीजिए, जीवन में आनन्द की लहर लहराने लग जायगी।'

—स्वामी चिदानन्द

—o—

वार्षिक शुल्क : भारत में—रु० ७.००; विदेश में अमरीकन डा० २.५० अथवा पौ० १.३०।

योग-वेदान्त

भक्ति, धर्म, सदाचार और आरोग्य-शिक्षा का मासिक पत्र

संस्थापक : ब्रह्मलीन स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सम्पादक : श्री स्वामी चन्द्रशेखरानन्द सरस्वती

वर्ष—२८ जुलाई—१९७८ अङ्क—७

गताङ्क से आगे—

सामगान

काव्यानुवादक—श्री वेदानन्द झा

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठय रेवत्पावक दीदिहि ।। (सा० ४-३)

कहाँ किरण तीव्र शुभ्र? कीजिए प्रकाश तो,
नयनों के पास ही, जिससे मैं लख सकूँ ।
युग-युग का अन्धकार, पाप तिमिर टार-टार,
बन-बन कर यती श्रेष्ठ, बन-बन कर विनत चार ।।

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ।। (सा० ४-४)

प्रिय है जो विज्ञ चार, करता उर से पुकार,
करता तप विविध भाँति, करता उपचार प्यार ।
लखता वह दिव्य मूर्त्ति, प्रणय-सिन्धु आस-पास,
बनता है प्रणय-मूर्त्ति, मधुमय कर अमिय पान ।।

अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ।। (सा० ४-५)

त्राता हे सदय देव, सर्वदेव सतत काल,
ध्वंस सर्वत्र कर, तिमिर-राशि पाप-ताप ।
आइए बढ़ कर समक्ष, हृत्तल के पास में,
देखूँगा सौख्य-स्रोत, नायक ब्रह्माण्ड का ।।

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ।। (सा० ४-६)

आते बढ़ नित्य आप, उषा को साथ ले,
हर कर सब तिमिर-राशि, सौख्य विविध भाँति दे ।
विस्तृत ज्यों कर विशाल, मधुमय निज छवि निखार,
गहते हैं भाँति-भाँति, जो सजग, जो उदार ।।

(क्रमशः)

स्वाध्याय से लाभ

—श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

स्वाध्याय का अर्थ है 'स्वयं अध्ययन' अथवा 'स्वयं का अध्ययन'। यह धार्मिक ग्रन्थों तथा आत्मदर्शी ऋषियों द्वारा रचित ग्रन्थों का नित्य नियमित अनुशीलन भी है। यह धार्मिक ग्रन्थों का दैनिक पाठ अथवा पारायण है। स्वाध्याय राजयोग के 'नियम' का चतुर्थ अङ्ग है। यह आत्मा के स्वरूप अथवा 'मैं कौन हूँ' की परिपृच्छा है। मन्त्र-जप भी स्वाध्याय है। जब महात्माओं का प्रत्यक्ष सत्सङ्ग प्राप्य न हो तो स्वाध्याय एक प्रकार से परोक्ष सत्सङ्ग का रूप लेता है।

स्वाध्याय मन को उच्चतर आध्यात्मिक ऊँचाइयों की दिशा में प्रेरित करता तथा उन्नत बनाता, शङ्काओं का समाधान करता, अपवित्र विचारों का उन्मूलन करता, मन को गति करने के लिए नवीन आध्यात्मिक प्रसीताओं का निर्माण करता, मन के विक्षेप को कम करता, धारणा में सहायता देता तथा मन-रूपी मृग को चरने के लिए चर-भूमि का काम देता है। जब आप धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं तो आप उनके रचयिताओं, जो कि साक्षात्कार-प्राप्त आत्माएँ हैं, के साथ एक-स्वर हो जाते हैं। आप उनसे प्रेरणा प्राप्त करते तथा भाव-विभोर हो उठते हैं।

स्वाध्याय प्रोत्साहन तथा प्रकाश प्रदान करता है। यह आपके सम्मुख एक ऐसे सन्तों की सूची प्रस्तुत करता है जो स्वयं पथ पर चले, कठिनाइयों का सामना किया तथा उन्हें दूर किया। इस भाँति वह आपमें आशा तथा शक्ति का सञ्चार कर आपको आह्लादित करता है। यह मन को सत्त्व से आपूरित करता तथा उसे प्रेरणा देता और उन्नत बनाता है।

सन्त-महात्माओं द्वारा रचित ग्रन्थों में समाविष्ट उपदेशों को कार्यरूप में परिणत करना अपने त्रस्त शरीर की पीड़ा शमन करना, अपने क्षत-विक्षत आत्मा का व्रणरोपण करना तथा जीवन के अज्ञानजन्य सभी प्रकार के दोषों से अपनी रक्षा करना है। आध्यात्मिक ग्रन्थ सभी उद्वेगकारी परिस्थितियों में सान्त्वनादायक मित्र का, सभी कठिनाइयों में आदर्श उपदेशक का, अज्ञानता तथा मूर्खता-रूपी रात्रियों में पथ-प्रदर्शक प्रकाश का, दोषों के लिए सर्वरोगहर औषधि का तथा भाग्य-निर्माता का कार्य करता है।

धर्मग्रन्थों में सन्त-महात्माओं, दार्शनिकों तथा रहस्यवादियों के ज्ञान समाविष्ट हैं। स्वाध्याय द्वारा सभी विज्ञानों के रहस्य पर प्रभुत्व प्राप्त कीजिए। पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को जानिए तथा अपनी एकदेशीय सत्ता अथवा वैयष्टिक व्यक्तित्व को भागवतीय प्रकृति की गति अथवा ऋत के धर्मों के साथ संस्वरित कीजिए। ज्ञान शक्ति तथा आनन्द की कुञ्जी है। ज्ञान अगण्य दुःखों तथा असंख्य पापों को शून्य बनाता, अज्ञान के मूल का उच्छेदन करता तथा शान्तिमय एकता तथा परम पूर्णता प्रदान करता है।

स्वाध्याय अवधानपूर्वक करना चाहिए। आपने जो कुछ अध्ययन किया है उसे समझना चाहिए तथा आपने जो कुछ समझा है उस सबको अपने दैनिक जीवन में व्यवहार में लाना चाहिए। यदि आप धर्मग्रन्थों की शिक्षाओं को अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयास नहीं करते तो आपके अध्ययन से कोई लाभ नहीं होगा। आपको उन लोक-विश्रुत शिक्षित विद्वानों की भाँति नहीं रहना चाहिए।

चार शिक्षित विद्वान् थे। उनमें से एक आयुर्वेद का वैद्य, एक ज्योतिषी, एक सङ्गीतज्ञ तथा एक नैय्यायिक था। ये चारों ही अपनी-अपनी विद्या में महान् विद्वान् थे, अपने-अपने विषय में

प्रवीण थे; किन्तु जीवन के सम्बन्ध में ज्ञानहीन थे। एक बार इन्हें एक ग्राम में एक दिन व्यतीत करना पड़ा।

वे अपनी खाद्यसामग्री एकत्र करने की खोज में निकले तथा आयुर्वेदिक वैद्य शाक-सब्जी खरीदने बाहर गया; किन्तु वह शीघ्र ही खाली हाथ वापस आ गया; क्योंकि वह शाक के सापेक्षिक पौष्टिकता-सम्बन्धी अपने भैषजिक ज्ञान के कारण उनमें से किसी को पसन्द न कर सका। आलू वायुकारक होने के कारण हानिप्रद था तो प्याज अत्यन्त तामसिक था। इसी भाँति अन्य सभी शाक सदोष सिद्ध हुए। उनमें से कोई भी भोजन के लिए उपयुक्त न था।

ज्योतिषी पकाने के लिए नारियल लाने के लिए वृक्ष पर चढ़ा। जब वह वृक्ष से नीचे उतर रहा था तो पास के घर में एक गधा रेंकने लगा। फिर क्या था? ज्योतिषी वृक्ष से नीचे उतरते हुए आधे मार्ग में रुक गया और इस गधे के रेंकने का ज्यौतिषीय-फल निकालने का तुरन्त निर्णय लिया और इस भाँति वह खड़ा रहा।

सङ्गीतज्ञ की कथा इससे भी कहीं बढ़ कर करुणाजनक तथा हास्यास्पद थी। वह जिस पात्र में चावल पकाया जा रहा था, उसे ध्यान से देख रहा था। पानी उबल रहा था। उबलते हुए पात्र से शीघ्र ही लयबद्ध शब्द निकलने लगा। सङ्गीतज्ञ अपने सङ्गीत-ज्ञान के प्रति सत्यशील तथा निष्ठावान् था। उसने तुरन्त ताल पर ध्यान देना आरम्भ कर दिया; किन्तु क्या उबलते हुए पात्र का शब्द सङ्गीत के ज्ञात नियमों के अनुरूप होगा! सङ्गीतज्ञ तुरन्त क्रोधावेश में आपे से बाहर हो गया और दर्वी (करछी) से पात्र को फोड़ डाला। फिर क्या था चावल भूमि पर बिखर कर नष्ट हो गया।

नैय्यायिक अपने पाण्डित्य के लिए उनसे अच्छा न था। वह घी से भरी एक कटोरी लिए वापस आ रहा था। मार्ग में उसके तर्कप्रिय मस्तिष्क में यह आया कि इस बात का परीक्षण तथा सत्यापन किया जाय कि घी का आधार कटोरी है अथवा कटोरी का आधार घी। उसने तत्काल ही कटोरी उलट दी। फिर क्या था! घी भूमि पर गिर गया और तुरन्त नष्ट हो गया। नैय्यायिक इस क्षति से शोकग्रस्त था, फिर भी उसने कटोरी तथा घी विषयक खोज पर अपने को बधाई दी और तर्कपूर्ण विचारों में मग्न अपने घर वापस आया।

आप कोरे विद्वान् न बनें; किन्तु यथार्थ में बुद्धिमान् बनें; क्योंकि पुस्तकों का पठन तथा पाण्डित्य मात्र आपको रञ्चमात्र भी सच्चा सुख प्रदान नहीं करेगा। ज्ञान आनन्द है। पुस्तकीय ज्ञान निष्प्राण ज्ञान है। गुरु की सेवा, उनसे अध्ययन तथा उनकी शिक्षाओं का उनके यथार्थ भाव में पालन द्वारा अनुभव तथा सच्चा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। सम्यक् समझ के साथ धर्मग्रन्थों के अनवरत पाठ तथा दैनिक जीवन में उसके अभ्यास से भगवान् के साथ सम्पर्क स्थापित होता है।

रामायण, भागवत, योगवासिष्ठ आदि धर्मग्रन्थों तथा अन्य सद्ग्रन्थों के पाठ में नियमित रहना चाहिए। यदि आप श्रीमद्भगवद्गीता के विचारों पर चिन्तन करें तथा उन विचारों पर अपने मन को केन्द्रित करें तो यह एक प्रकार की निम्न समाधि है। गीता स्वाध्याय के लिए अद्वितीय ग्रन्थ है। इसमें सभी योगों का सार तथा वेदों का नवनीत समाहित है। जितना समय आपकी इच्छा पर निर्भर करता हो उसके अनुसार आप इस उद्देश्य के लिए आध घण्टा से तीन घण्टा तक समर्पित कर सकते हैं। धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय क्रियायोग अथवा नियम है। यह हृदय को पवित्र बनाता तथा मन को उदात्त तथा उन्नतकारी विचारों से आपूरित करता है।

अतः ज्ञानी जनों द्वारा प्रतिपादित पवित्र सत्यों

को धारण करने वाले धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय तथा भगवान् की लीलाओं का श्रवण सच्चे साधक को, चाहे वह आध्यात्मिक उद्विकास के किसी भी प्रक्रम पर हो, कभी भी नहीं त्यागना चाहिए। क्या आप जन्मजात सन्त तथा परिव्राजक श्री शुकदेव से भी अधिक उन्नत हैं ? क्या आप उन महर्षियों से भी अधिक उन्नत हैं जो श्री सूत द्वारा सुनायी जाने वाली श्रीमद्भागवत की कथा को सुनने के लिए नैमिषारण्य में एकत्रित हुए थे ? इन महान् सन्तों के प्रख्यात उदाहरणों से पाठ सीखिए। सदा साधक बने रहिए। सदा आध्यात्मिक ज्ञान के पिपासु जिज्ञासु बने रहिए। सदा एक विद्यार्थी बने रहिए। एकमात्र वही व्यक्ति वृद्ध है जो यह सोचता है कि उसने पर्याप्त सीख लिया है तथा अब उसे और अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं रही। वह व्यक्ति जीवित ही मृतक के समान है जो प्रभु की लीला-कथाओं अथवा आध्यात्मिक प्रवचनों को सुनने की विवशकारी उत्सुकता अनुभव नहीं करता है। आप अपने अन्दर महान् आध्यात्मिक सत्य, जो अविस्मरणीय काल से करोड़ों सन्तों, महात्माओं तथा ऋषियों द्वारा अतीव प्रशंसा तथा व्याख्या किये जाने के बावजूद भी अनन्त है, को और अधिक जानने, उसका और अधिक अभ्यास करने तथा उसका अधिक गम्भीरता से साक्षात्कार करने के तारुण्यपूर्ण उत्साह तथा गम्भीर उत्सुकता के परिरक्षण द्वारा जरा तथा मृत्यु को भी दूर हटा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त आप यह न भूलें कि आप चतुर्दिक् से भौतिकवादी प्रभावों से परिवेष्ठित हैं। यदि एक दिन भी आप शिथिल होते हैं तो दुष्ट शक्तियों को अवसर प्राप्त हो जायगा और वे विनाशलीला कर बैठेंगी। यदि सोपान के शीर्ष पर से गेंद गिराया जाय तो वह भूमि पर एक पल से भी कम समय में पहुँच जायगा जबकि उसे ऊपर ले जाने में बहुत अधिक समय लगा था। एक क्षण की भी असावधानी में बहुत हानि हो सकती है। जीवन अल्प है, समय तीव्र गति से भागा जा रहा है। आप शैतान, माया, मार अथवा दुष्ट मन-रूपी भयङ्कर शत्रु के साथ अपने संग्राम में इतने अधिक प्रयास से जो भूमि प्राप्त की है उसका एक इञ्च भी खो नहीं सकते।

इस मर्कट-मन को एक क्षण भी विराम लेने न दें। यहीं पर ही सत्सङ्ग तथा आध्यात्मिक साहित्य आपके महान् सहायक होते हैं। वे आपके उद्धारक हैं। धर्मग्रन्थ कितने ही उदात्त विचार आपके द्वार तक लाते हैं। धर्मग्रन्थों के पृष्ठों को सावधानीपूर्वक पढ़िए। जिन वाक्यों का आपके जीवन से सीधा सम्बन्ध है, उन्हें रेखाङ्कित कीजिए। अपने अवकाश के क्षणों में उन पर मनन कीजिए। इस भाँति आप देखेंगे कि आप अनेक बाधाओं को अतिक्रमण करने तथा अनेक पतन-गर्तों को छलाँग लगा कर पार कर जाने में समर्थ हैं। क्या मन इन लेखांशों को बार-बार पढ़ने को अनिच्छुक है ? यह तो आपको सुषुप्ति में डालने के लिए माया का एक सबल अस्त्र है। क्या आप एक ही भोजन बार-बार नहीं खाते ? आपको उन्हीं आध्यात्मिक वाक्यों की बार-बार पुनरावृत्ति तब तक करते रहनी होगी जब तक कि वे आपके हृदय-पटल पर अमिट रूप से उत्कीर्ण नहीं हो जाते, जब तक वे आपके आन्तरिक स्वरूप के अभिन्न अङ्ग नहीं बन जाते।

तब आपके अन्दर निरोध-संस्कार के दुर्ग का निर्माण होगा। पुनरावृत्ति विचारों को आपके हृदय तथा मन के अन्तर्तम प्रकोष्ठ में धकेल कर पहुँचाती है और तब विचार धीरे-धीरे टपक कर आपके सुप्त-चेतन मन में पहुँचेंगे। जो बुरे विचार वहाँ घात लगाये बैठे होंगे वे विदग्ध तथा विनष्ट हो जायेंगे। आपको इसका भान भी नहीं हो सकेगा कि आपके अन्दर क्या चमत्कार निष्पन्न हुआ है। एक ही आध्यात्मिक ग्रन्थ के बार-बार स्वाध्याय का ऐसा कल्याणकारी प्रभाव होता है। हमारे पूर्वजों ने जो गीता, रामायण, भागवत

आदि ग्रन्थों का नित्य, नियमित तथा श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सविधान पाठ करने का आग्रह हमसे किया है, उसका यही कारण है। वे आपकी आन्तरिक शक्ति बढ़ायेंगे। आपकी सङ्कल्प-शक्ति अधिक बलवती होगी। इस भाँति जब सम्पूर्ण आन्तरिक प्रकृति दिव्यता में रूपान्तरित हो जाती है तो ध्यान का एक ही प्रयास आपको निर्विकल्प समाधि में पहुँचा देगा। आप पल भर में भगवत्साक्षात्कार करेंगे।

अनु० : श्रीमती गुलशन सचदेव

सभी प्रवृत्तियों को आध्यात्मिक बनाना ही जीवन का उद्देश्य है

—श्री स्वामी चिदानन्द जी

सांसारिक प्रवृत्तियों के मध्य में रह कर भी व्यक्ति इस पार्थिव जगत् में जीवन के परम उद्देश्य की, आध्यात्मिक उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। यह सत्य है कि आध्यात्मिक जीवन तथा लौकिक जीवन के कार्य के विचार से उनके क्षेत्र में गुणार्थ भिन्न-भिन्न हैं। लौकिक जीवन का क्षेत्र आपके बाह्य देश में है और आध्यात्मिक जीवन का क्षेत्र यद्यपि किञ्चित् बाह्यत: भी अभिव्यक्त होता है, पर वह आपके अन्तर्देश में है। तथापि ये दोनों ही आपके अङ्ग हैं और जहाँ कहीं भी आप होंगे वहीं आपका आध्यात्मिक जीवन भी होगा। यदि आप पारिवारिक जीवन की स्थिति में रह रहे हैं तथा सांसारिक प्रवृत्तियों के व्यस्त क्षेत्र में श्रमपूर्ण जीवन यापन कर रहे हैं तो आपका आध्यात्मिक जीवन भी वहाँ अवश्यमेव होगा। इस आन्तरिक जीवन का सृजन अपने में दृश्य बाह्य परिवर्तन लाने से नहीं किया जा सकता है। आप रोम में रहने से बैंकूवर की अपेक्षा अधिक अच्छा आध्यात्मिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकते हैं और न ही गिरि-पाद में रहने के बदले पर्वत-शिखर पर रहने से आप अधिक आध्यात्मिक व्यक्ति ही बन सकते हैं। भौगोलिक स्थितियाँ उसे परिवर्तित नहीं कर सकती हैं। केवलमात्र बाह्य रूप के परिवर्तन आपके आध्यात्मिक जीवन को यथार्थत: तथा तत्त्वत: प्रभावित नहीं कर सकते हैं; क्योंकि आध्यात्मिक जीवन आत्मिक जीवन है तथा आप जहाँ कहीं भी होंगे, अन्तरात्मा की दृष्टि भगवान् की ओर होगी। भले ही आप सर्वाधिक पवित्र परिपार्श्व में, सर्वाधिक पवित्र स्थान में, ठीक भगवान् के पूजा-स्थान में ही क्यों न रहें, पर यदि आपकी आत्मा भगवान् में नहीं है, भगवान् की दिशा में उत्थित नहीं है तो अध्यात्म के राज्य में आपका प्रवेश बिलकुल ही नहीं है।

महान् आचार्यों ने साधकों को इस तथ्य को हृदयङ्गम कराने के लिए अनेक उपायों का प्रयोग किया है। मुझे एक घटना स्मरण आ रही है जो हम लोगों के लिए एक सुज्ञात कहानी है और बहुत प्राचीन भी नहीं है। यह घटना सुप्रख्यात स्वामी विवेकानन्द के गुरुदेव श्री रामकृष्ण के जीवन में हुई। अपने जीवन के प्रारम्भिक-काल में श्री रामकृष्ण तत्कालीन भारत के राजनगर, कलकत्ता के एक हिन्दू-मन्दिर में पुजारी थे। इस मन्दिर की स्थापना एक महिला ने की थी जो एक प्रकार से एक छोटी रानी थी। वह तद्देशीय एक शासक की धर्मपत्नी तथा एक अतीव धनाढ्य महिला थी। उसने उस मन्दिर का निर्माण प्रचुर धनराशि से कराया था और उसे उपजाऊ भूमि प्रदान कर रखी थी। प्रचुर सम्पत्ति तथा समृद्धि के होते हुए भी वह एक भक्त महिला थी। अपनी सम्पत्ति की देखभाल का कार्य करने के अतिरिक्त उसका जीवन आध्यात्मिक था। वह कभी-कभी पूजा के समय मन्दिर आ जाती थी और पवित्र स्थान में बैठती थी। श्री रामकृष्ण उस समय युवक पुजारी थे। उनकी आयु कदाचित चौबीस या पच्चीस वर्ष रही होगी। इस

अवसर पर यह भद्र महिला गङ्गा में स्नान द्वारा पवित्र हो ठीक पवित्र स्थान के अन्दर बैठ कर ध्यान कर रही थी। पूजा-कार्य ऐसी स्थिति में पहुँच चुका था जब देवी की स्तुति तथा महिमा-गान किया जाता था। जब श्री रामकृष्ण से सङ्गीत का प्रवाह फूट निकलने वाला ही था कि इस महिला ने कहा : 'क्या आप अमुक गान गाने की कृपा करेंगे ?' और उन्होंने कहा : 'हाँ !' उन्होंने भगवती माँ का स्तोत्र गाना प्रारम्भ कर दिया। जब वे गा रहे थे तो लोगों ने देखा कि अकस्मात् उन्होंने गाना बन्द कर दिया, वे उस भद्र महिला की ओर मुड़े और उसकी पीठ पर जोर से एक थप्पड़ लगा दिया और इतना कहा : 'क्या ? यहाँ भी ?' बस, इसके पश्चात् उन्होंने गाना पुन: आरम्भ कर दिया। निकट ही सशस्त्र अङ्गरक्षक थे, जो उस महिला के साथ-साथ मन्दिर आये थे। मन्दिर के कुछ उच्चाधिकारी भी वहीं थे। वे सभी अवाक् रह गये। कुछ तो काँपने लगे। उनमें से एक या दो तो यह सोच रहे थे : 'अब इस व्यक्ति का जीवन समाप्त हो चला है। कदाचित् वह उन्हें शीघ्र बाँधने की आज्ञा देंगी।' किन्तु उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि एक पुत्री को जैसे पिता दण्ड दे रहा हो वह अकस्मात् विनम्र बन गयीं, चुप रहीं और गाने को ध्यानपूर्वक सुनना आरम्भ कर दिया। गान के समाप्त होने पर पूजा आरम्भ हुई और पूजा की समाप्ति पर वह बाहर आ गयीं मानों कुछ हुआ ही नहीं। अधिकारी तथा अङ्गरक्षक प्रतीक्षा तथा आश्चर्य कर रहे थे : 'अब क्या होने वाला है !' जब अधीक्षक ने प्रश्न किया : 'क्या आपकी कोई आज्ञा है ? जो कुछ हुआ उसे मैंने देखा था, किन्तु मैं पवित्र स्थान के अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता था, इसी से मैं कुछ नहीं कर सका।' उन्होंने सरल-सा उत्तर दिया : 'नहीं, कोई आज्ञा नहीं है।' कालान्तर में, उनका दामाद, जो उनकी ओर से मन्दिर की व्यवस्था करते थे, ने यह घटना सुनी और उनसे इस सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने कहा : 'वह (रामकृष्ण) बिलकुल ठीक थे। मैंने उनसे माँ का स्तोत्र गान करने को कहा था, क्योंकि वहाँ पर माँ की प्रतिष्ठा है। जब वे गा रहे थे तो मैं भूसम्पत्ति के वाद के विषय में, जो आगामी दिन नगर-उच्च-न्यायालय में सुना जाना था, सोच रही थी और उस विषय में चिन्तित थी। मैं भगवती माँ अथवा उनकी स्तुति में गाये जाने वाले गान के विषय में नहीं सोच रही थी। वाद ही मेरे मन में छाया हुआ था और यह स्वभावत: ही ऐसी बात थी जो भगवान् के सामने नहीं की जाती। अत: मुझे भर्त्सना की आवश्यकता थी, और उन्होंने की। वस्तुत: इसे उन्होंने नहीं किया, इसे तो भगवती माँ ने किया।' अस्तु यह महिला वस्तुत: मन्दिर में नहीं थी, वरन् वह तो विधि न्यायालय में थी। आप अपने अन्दर जो कुछ हैं वही इस बात को संविहित करता है कि आप आध्यात्मिक जीवन यापन कर रहे हैं या सांसारिक जीवन यापन कर रहे हैं न कि आप जिस स्थान में रह रहे हैं। संसार तथा संसार के माध्यम से योगमय जीवन यापन करने का यही रहस्य है।

यदि आप अपने जीवन को आध्यात्मिक बनाते हैं तो प्रत्येक वस्तु योगमय बन सकती है तथा जीवन को आध्यात्मिक बनाने की विधि की व्याख्या बड़े ही भव्य रूप से पवित्र धर्मग्रन्थ भगवद्गीता में की गयी है। योग का अर्थ है भगवान् के साथ मिलन। यदि आप अपना जीवन भगवान् की परा-भक्ति की शृङ्खला द्वारा भागवत सत्ता के साथ सतत आन्तरिक योग में व्यतीत करते हैं तो आप चाहे कुछ भी हों, आप चाहे जहाँ और जिस प्रकार रह रहे हों, आप योगमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, क्योंकि आप भगवान् के साथ रह रहे हैं और अपने अन्त:जीवन में भगवान् के साथ एक हैं।

भगवान् के साथ एकात्मता का ऐसा जीवन,

प्रेम तथा भक्ति के द्वारा उनसे (भगवान् से) सदा-सर्वदा के लिए संयुक्त होने के लिए मनोयोगपूर्ण प्रयास का जीवन तथा ऐसा ज्ञानयुक्त जीवन कि यह सम्पूर्ण जीवन ऐसे योग की सर्वोत्कृष्ट पूर्णता की चरम परिणति के लिए है—इस चेतना के साथ यापित जीवन ही—दिव्य जीवन है। यह योगमय जीवन है। यदि आप मनोयोगपूर्वक अपनी भावना में उनकी (भगवान् की) ओर सदा पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं तथा दिन-प्रतिदिन 'उनके' अधिकाधिक निकट पहुँचते जा रहे हैं तो आप योगमय जीवन यापन कर रहे हैं, भले ही आपका बाह्य जीवन कोई भी रूप क्यों न धारण करे।

योगमय जीवन यापन करने के लिए यह भावना अत्यधिक आवश्यक है और आपने जो कुछ भी योग के विषय में सुन रखा है वह इस ज्ञान के प्रकाश में असन्दिग्ध तथा स्पष्ट हो जाना चाहिए। जीवन को आध्यात्मिक बनाने वाले घटकों में यह परमावश्यक तत्त्व होने से हमें यह विचार करना होगा कि वे कौन-से घटक हैं जिनका समावेश हम अपने दैनिक पारिवारिक जीवन में कर सकते हैं जो इस तत्त्व को अग्रसारित करे और भगवान् के साथ आन्तरिक रूप से सदा संयुक्त रहने में हमें सक्षम बनाये।

निश्चय ही हम इस बात को सत्य मान लेते हैं कि व्यक्ति का प्रथम कर्त्तव्य है—जीवन में अपने उद्देश्य के प्रति सचेत रहना। सदा सचेत रहें कि आप क्यों रह रहे हैं और सदा इस बात में सचेत रहें कि आपको जीवन में किस उद्देश्य की पूर्त्ति करनी है। यही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात है। जानिए कि परमोद्देश्य के प्राप्त्यर्थ जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग करना ही जीवन का समग्र अर्थ है।

हम इस बात को सत्य मान लेते हैं कि हम जिन लोगों के साथ व्यवहार कर रहे हैं वे जीवन के आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति पहले से ही सचेत हैं। वे जानते हैं कि केवल भगवान् में ही सच्ची शान्ति तथा सुख प्राप्त किया जा सकता है, भगवान् में ही इस मर्त्य जीवन की समस्त अपूर्णताओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है, भगवान् में ही शोकों का अतिक्रमण किया जा सकता है तथा शाश्वत जीवन, अमरत्व, मोक्ष तथा निर्भयता की स्थिति प्राप्त की जा सकती है और इस ज्ञान के साथ ही ऐसे व्यक्ति में ऐसा जीवन यापन करने के लिए पहले से ही एक तीव्र अन्तश्चालना तथा अभीप्सा की सृष्टि की गयी है जिससे वह अभी इस जीवन में ही इस परम उपलब्धि को प्राप्त कर सके। ऐसा व्यस्त पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति के मार्ग में कठिनाइयाँ आती हैं और सर्वाधिक कठिनाई तो यह है कि व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन के जीवन में इतनी अधिक संख्या में प्रवृत्तियाँ एकत्रित हो जाती हैं कि भक्ति-मार्ग की, प्रार्थना तथा उपासना-मार्ग की भावनाओं के व्यवहार के लिए समय ही नहीं मिल पाता। यह एक महान् बाधा है, किन्तु यह बहुत गम्भीर नहीं है और न मुख्य ही है। मुख्य बाधा के अन्तर्गत आपके सांसारिक जीवन के, ऐहिक जीवन के अनेक पहलू हैं जिन्हें आपको पूरा करना होता है। क्यों? क्योंकि जीवन की सम्पूर्ण संरचना ही आर्थिक है और व्यक्ति को जीविकोपार्जन हेतु कार्य करना होता है। उत्तराधिकार में प्राप्त होने वाली सम्पत्ति तथा पैतृक धन के दिन अब नहीं रहे। व्यक्ति को कार्य करना होता है और ऐहिक जीवन का यही प्रमुख पहलू है।

गृह्य जीवन द्वितीय पहलू है। यहाँ से ही व्यक्ति दिन-प्रतिदिन व्यावसायिक क्षेत्र में जाता है और दिन का कार्य समाप्त होने पर पुनः यहीं वापस आता है। तृतीयतः समुदाय का एक उत्तरदायी सदस्य होने के नाते सामाजिक जीवन—कदाचित गोष्ठी जीवन अथवा मित्र बनाना अथवा कुछ अन्य प्रवृत्ति—का पहलू होता है जो यदा-कदा सहसा प्रकट हो जाते हैं। तत्पश्चात्

प्रत्येक व्यक्ति का निजी वैयक्तिक, व्यक्तिगत जीवन होता है।

वैयक्तिक, व्यक्तिगत जीवन ही आधार है। इसके पश्चात् पारिवारिक अथवा गृह्य जीवन—गृह-जीवन आता है जिसमें पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भ्राता-भगिनी आदि नाना प्रकार के सम्बन्ध आते हैं। तदुपरान्त, यद्यपि आवश्यक, पर उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, व्यावसायिक जीवन आता है। अधिकांश के लिए इसका उसके मानव-जीवन के आध्यात्मिक तथा नैतिक पक्ष पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है और न उसके लिए कोई महत्त्व ही रखता है। अतः यह विस्मरण न करें कि आपके जीवन का वैयक्तिक पहलू ही आपके लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

—अनूदित

—०—

अध्यात्म-शोधक की कठिनाइयाँ

—श्री स्वामी कृष्णानन्द जी

आध्यात्मिक जीवन जीना सम्भवतः सभी कलाओं तथा विज्ञानों में से अत्यन्त दुर्बोध तथा गुप्त है। आध्यात्मिक जीवन जीने तथा समझने की इस कठिनाई का कारण यह है कि व्यक्तिगत रूप से मनुष्य के इस कठिन जोखिम का सम्बन्ध ऐसे अनेक कारकों से है जिनके लिए हर क्षण अत्यन्त निपुण तालमेल आवश्यक है और इसलिए यह अपने निजी तथा सामाजिक जीवन में लीक पर चलते हुए अपनी सहज वृत्तियों, द्वेषों तथा सामान्य दिनचर्या का त्याग करने में भाग्यानुसार सुख भोगने के दृष्टिकोण के अभ्यासी व्यक्ति की पहुँच से परे है। यह तो एक दुर्लभ भाग्य की बात है कि कोई कभी प्रत्यक्ष तथा कभी अप्रत्यक्ष कारणों से आध्यात्मिक आदर्शों से अनुप्राणित हो जाता है। सामान्यतया किसी व्यक्ति के हृदय में किसी आध्यात्मिक सिद्ध पुरुष या गुरु की सतत सङ्गति से या लम्बे समय तक आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन से या फिर जीवन में घटने वाले तीव्र परस्पर निषेधों के आकस्मिक प्रत्यक्षीकरण से, जीवन में व्याप्त पीड़ा या दुःख से या कभी-कभी इस समस्त लौकिक तथा पार्थिव जगत् की तात्त्विक निस्सारता और अनित्यता में से अचानक उत्पन्न आत्म-दृष्टि के झटके से आध्यात्मिक प्रेरणा से अनुप्राणित हो सकता है। किसी व्यक्ति में आध्यात्मिक प्रेरणा या आकांक्षा के ये कुछ प्रत्यक्ष कारण कहे जा सकते हैं यद्यपि इन प्रत्यक्ष कारणों के पीछे भी मनुष्य के चेतन स्तर से भी परे कई अप्रत्यक्ष गहन कारण होते हैं। परन्तु गत जीवनों में किये गये अत्यन्त तीव्र पुण्यकार्यों के फलस्वरूप और उन जीवनों में इस हेतु किये गये सम्यक् प्रयासों के कारण मनुष्य में इस जीवन के आरम्भ में ही गहन आध्यात्मिक पिपासा जाग्रत हो सकती है।

मूल्यों के आध्यात्मिक भाव के दबाव आश्चर्यजनक परिणाम ला सकते हैं और आसपास के लोगों को चौंका देने वाले व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोणों को पैदा कर सकते हैं। इस हालत में लोग यह कह सकते हैं कि इस (अध्यात्म-शोधक) व्यक्ति के साथ अवश्य कुछ गड़बड़ है। इससे व्यक्ति तथा समाज के बीच भावात्मक तनाव पैदा हो सकते हैं, यद्यपि ये अल्पकालीन ही होंगे और ये तनाव व्यक्ति को अपने जन्म या पोषण से प्राप्त सामाजिक नीति तथा संस्कारों से पृथक् या असङ्गत जीवन-दृष्टिकोण अपनाने पर विवश कर सकते हैं। किन्तु भीतर से उठने वाली तीव्र आत्म-लहर समय पर दुनिया की मजबूत-से-मजबूत शक्तियों का सामना कर सकती है और अब तक के पवित्र तथा प्रिय-से-प्रिय रहे मन्दिरों तथा मकानों (पदार्थों) को जड़ से उखाड़ने वाला प्रचण्ड झञ्झावात बन सकता

है। यह अभी तक के हमारे अनिवार्य और निकटतम सम्बन्धियों के प्रति हमारे अनुराग या प्रेम-रूपी महल की दीवारों को भी गिरा सकती है। इस दृष्टि से भीतर से आत्मा का इस प्रकार का जागरण एक प्रकार की क्रान्तिकारी आध्यात्मिक हिंसा है जो कि आसपास के समस्त जगत् पर फैल सकती है और जो सामान्यत: नैतिक दृष्टि से वाञ्छित, सामाजिक दृष्टि से आवश्यक और पारम्परिक दृष्टि से अभेद्य मानी गयी है। भीतर से उठने वाली यह लहर सामान्य जागतिक औपचारिक पवित्रताओं के लिए खतरा या इस जीवन के लौकिक मूल्यों को जलाने वाली एक अग्नि के रूप में देखी जा सकती है। जब व्यक्ति आत्मा के इस तरह के जागरण के वश में हो जाता है तो उसमें यह भाव पैदा हो जाता है कि यह जगत् व्यर्थ है और एक ईश्वरीय सत्ता का साक्षात्कार ही मात्र कर्त्तव्य है। इस परिस्थिति में ही मनुष्य एकान्त स्थानों, मन्दिरों, गिरजाघरों, मठों, आश्रमों आदि की खोज में इस आशा के साथ निकल पड़ता है कि शायद वहाँ उसे चिन्तन करने तथा आध्यात्मिक जीवन के योग्य सुविधाएँ प्राप्त होंगी। इस प्रकार हम ऐसे शोधक को मठवासी के रूप में देखते हैं।

गीता और महाभारत इस प्रकार के आध्यात्मिक शोधकों की समस्याओं तथा उन्हें सदा के लिए हल करने के प्रयासों के उदाहरणों से भरे महान् ग्रन्थ हैं। महाभारत के आदि-पर्व में व्यक्ति में इस प्रकार की आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के सुप्त बीजों की अवस्थाओं और शक्तियों तथा उनसे उत्पन्न आध्यात्मिक आकांक्षाओं का बच्चे की भाँति पोषण तथा रक्षण की आवश्यकताओं का वर्णन किया गया है। बच्चे असुरक्षा और आशा के मिश्रित तथा अस्पष्ट वातावरण में पलते हैं और उन्हें अपने आसपास की दुनिया या अपने भविष्य का कोई विश्वसनीय ज्ञान नहीं होता है। सभा-पर्व में आशा का पहलू पूर्ण प्राप्ति की खुशियों का जिनमें हर वस्तु सुरक्षित, सुन्दर तथा भव्य प्रतीत होती है, वर्णन है। यही वास्तव में ईश्वर के चिन्तन में बीतने वाला जीवन बिताने के लिए मठ के बनवासी जीवन में प्रविष्ठ अध्यात्म-शोधक की उत्साहभरी तथा आशापूर्ण अवस्था है। किन्तु सभा-पर्व के अन्त में उस पीड़ा का जिक्र है जो अन्त में प्रारम्भिक उत्साह को अत्यन्त दु:ख और निराशा में बदल देती है और हम पाण्डवों को अवर्णनीय दु:ख तथा निराशा के जङ्गल में भटकता हुआ पाते हैं। तब आता है, आरण्यक-पर्व। यहाँ स्थिति यह है कि पाण्डवों को वनवास-काल की समाप्ति के बावजूद अज्ञातवास में रहने पर विवश होना पड़ता है और सामाजिक पाखण्ड से भरी असभ्य दुनिया से आक्रान्त साहसी अच्छाई को अमित्र शक्तियों के प्रतिहिंसात्मक बदले का शिकार होना पड़ता है। यही बात विराट्-पर्व में भी है; किन्तु अन्त में सत्य विजयी होता है, अच्छाई सफल होती है और पुण्य की शक्ति देवताओं तक का ध्यान खींचते हुए प्रशंसित होती है। अचानक घटनाएँ पलटा खाती हैं और गहन पीड़ा के मध्य में दैवी सत्ता की शक्तिशाली सम्भावनाओं से आश्वासन मिलते हैं कि पदार्थ अब तक जैसे बुरे लगते थे उतने बुरे नहीं हैं। चारों ओर से सहानुभूति तथा समर्थन मिलता है और बड़ी शक्तियाँ एकत्र होती हैं। केवल देवराज इन्द्र ही नहीं बल्कि कृष्ण जैसे अपराजेय पुरुष तथा पार्थिव शक्तियों और दानवीय प्रवृत्तियों-रूपी अहङ्कार, लोभ, काम तथा क्रोध के विरुद्ध पुण्य तथा महत्त्वाकांक्षा के पक्ष में आ मिलते हैं। उद्योग-पर्व में पाण्डवों के इन शक्तिशाली तथा साहसी मित्रों के भावी कार्य पर परस्पर मन्त्रणा की चर्चा है। यह महाभारत के अठारह पर्वों में से सबसे अधिक जटिल है और यहाँ हमें पार्थिव पदार्थों पर प्रभुत्व करने तथा ऐन्द्रिक सम्पर्कों की सार्थकता और मूल्यों की विभिन्नता में सौन्दर्य तथा आनन्द प्राप्त करने वाली उन प्राकृतिक शक्तियों के विरुद्ध, जो कि

जीवन के अन्तिम एकत्व के लिए कार्य कर रही दैवी शक्तियों को नष्ट करने का प्रयत्न करती हैं एक क्रूर युद्ध के आरम्भ होने के पूर्व खेले जाने वाले नाटक का सचित्र वर्णन मिलता है। यहीं मानवी प्रयत्नों के साथ दैवी कृपा का सुन्दर मेल दीखता है और यह आशा तथा विश्वास दृढ़ होता है कि सफलता सम्भव है। स्वयं भगवान् दैवी आकांक्षाओं के संरक्षण का दायित्व ग्रहण करते हैं और उद्योग-पर्व में हम भगवान् कृष्ण जैसे दैवी पुरुष को शान्ति-स्थापना के लिए प्रयत्न करते हुए कौरवों की सभा में दौत्य कर्म करते देखते हैं। इतना ही नहीं वरन् विराट् रूप दर्शाने का अवसर आने पर अच्छाई, धर्म तथा महत्त्वाकांक्षा की शक्तियों के पक्ष में स्वयं श्रीकृष्ण की भयदायक शक्ति भी यहाँ प्रकट होती है। पर वास्तविक युद्ध भीष्म-पर्व में होता है, जहाँ आने वाले युद्ध के आरम्भ में ही पहले से अपरिहार्य माने गये भयानक युद्ध के लिए की गयी वीरोचित तैयारियों के विपरीत अर्जुन के आश्चर्यजनक दृष्टिकोण का अद्भुत वर्णन है।

यह स्थिति वस्तुतः, वास्तविक अध्यात्म-साधना का प्रारम्भिक प्रक्रम है जहाँ प्रारम्भिक उत्साह अचानक ठण्ढा पड़ता है, भावनाओं का मिश्रण होता है और घोड़े के आगे गाड़ी रखने की भाँति मूल्यों के उलटे अर्थ लगते हैं और इस प्रकार से युद्ध के साहसिक कार्य को आरम्भ करने को अनिवार्य मानने की अर्थपूर्ण पूर्व-प्रज्ञा के विपरीत तमाम तर्क तथा नीतिशास्त्र सामने आता है। यहीं पर श्रीमद्भगवद्गीता के अठारह अध्यायों में पूर्ण की ओर आत्मा के आरोहण की कुन्तल गति का वर्णन किया गया है। इस आत्मारोहण के युद्ध में दुर्योधन तथा उसके सहयोगियों के रूप में प्रकट बुराई की सेना का ही सामना करना तथा उन्हें पराजित करना ही नहीं है अपितु सबके लिए सम्मान्य और पूज्य भीष्म पितामह के रूप में परम्परागत विधान तथा नीति का, अतीव शक्तिशाली तथा सहायक द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व में असन्दिग्ध रूप से प्रतिबिम्बित दक्षता के साथ-साथ विद्वत्ता का तथा अतीव सहकारी और भयानक शक्ति के अवलम्बनीय स्रोत कर्ण के आकार में चित्रित अयुक्त रूप से निर्देशित मैत्री तथा भ्रातृभावना का भी सामना करना है। जीवन के अन्तिम उद्देश्य—साक्षात्कार—की प्राप्ति तथा आत्मा के तादात्म्य की प्रज्वलित वेदी पर इन सभी अच्छी, मूल्यवान् तथा पवित्र वस्तुओं का बलिदान करना ही पड़ता है और आत्मा के इस भयावने, दिल को दहला देने वाले सत्य तथा धर्म के स्थापनार्थ होने वाले युद्ध में अन्त तक भगवान् का मौन सहकारी हाथ प्रबल रूप से कार्य करता हुआ दृष्टिगोचर होता है और इस सबका सचित्र वर्णन महाभारत के पर्वों में सुन्दर ढङ्ग से अङ्कित है। (क्रमशः)

—अनूदित

—o—

एक संस्मरण—

गुरु - कृपा

— श्री स्वामी अशेषानन्द सरस्वती

संसार एक माया है। माया के अनेक रूप हैं। इस नामरूपात्मक जगत् में हम उसी प्रकार उलझे हैं, जैसे मकड़ी के जाले में कीट-पतङ्ग अनायास फँस जाते हैं; तब उससे निकलने का, बन्धन-मुक्त होने का कोई मार्ग ही दृष्टिगोचर नहीं होता। उन पतङ्गों के नन्हें-नन्हें पङ्खों में इतनी शक्ति कहाँ कि वे स्वयं को मुक्त कर सकें! और अन्त में विनाश निश्चित

है। मकड़ी अपने निर्दय अष्टपदों से उसे दबोच कर समाप्त कर देगी।

किन्तु ऐसे असमय में भी कभी-कभी 'डूबते को तिनके का सहारा' मिल जाता है। जब व्यक्ति जीवन से निराश हो जाता है, चारों ओर घना अन्धकार घेर लेता है और हाथ पसारने पर भी राह नहीं सूझती ऐसे विषम समय में अकस्मात् ही एक तेजपुञ्ज अनायास प्रकट होकर व्यक्ति का मार्ग आलोकित कर देता है। व्यक्ति हतप्रभ-सा, किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ हो आश्चर्यचकित रह जाता है। उसके जीवन में आशा का नवीन सञ्चार होता है। निराशा अन्धकार की भाँति विलीन हो जाती है। ठीक ही कहा है :

'जाको राखे साइयाँ, मार सके ना कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग वैरी होय॥'

गुरु ही ईश्वर है। उसकी अहेतुकी कृपा भ्रमित, भटके, निराश्रित तथा निराश साधक को सान्त्वना के साथ-साथ दिशा का ज्ञान करा कर और कभी-कभी तो उसकी बाँह भी पकड़ कर उसे लक्ष्य तक पहुँचा देती है, इसके लिए साधक का अधिकारी होना भी नितान्त आवश्यक नहीं है।

एक अबोध बालक में कौन-सी विशेषता है, कौन-सी योग्यता है, जो अपनी माता के मन से एक पल को भी पृथक् नहीं होता? माता कहीं रहे, किसी भी कार्य में व्यस्त रहे, किन्तु उसकी दृष्टि सदा अपने शिशु पर रहती है। शिशु की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्त्ति माता स्वयं, बिना कहे, बिना माँगे समय पर करती है। अतः जीवन में सदा योग्य तथा अधिकारी बनना ही पर्याप्त नहीं है और न महत्त्व का ही है, वरन् कभी-कभी तो अयोग्य तथा अनधिकारी होना भी वरदान बन जाता है।

गुण और दोष, धर्म तथा अधर्म किसी कार्य-विशेष से नहीं जुड़े हैं। उनका सम्बन्ध निहित भावना, उद्देश्य तथा परिणाम से है। क्षमा तथा निर्भयता गुण हैं, किन्तु यदि क्षमा का लाभ लेकर कोई अपराध करने लगे; इसी प्रकार निर्भय व्यक्ति यदि समाज में आतङ्क पैदा कर दे तब ये दोनों ही गुण दोष के रूप में उभर आयेंगे। दूसरी ओर यदि दण्ड और कायरता से समाज में व्यवस्था रहती है तथा व्यक्ति कुपथ पर जाने से बच जाता है तब ये दोनों दुर्गुण गुणों के रूप में निखर आते हैं। अतः शिशु की असमर्थता तथा माता पर निर्भरता ही वह गुण तथा विशेषता है जिसके द्वारा वह अपनी माता का स्नेह, उसकी कृपा प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है।

ठीक इसी प्रकार जब साधक अपने गुरु पर पूर्ण रूप से आश्रित हो स्वयं को गुरु को समर्पित कर देता है, तब गुरु उसे अपनी लम्बी बाँहों में समेट कर अभय कर देता है। साधक मुक्त हो जाता है और तब वह 'उसे' प्राप्त कर लेता है, जिसे प्राप्त करने के पश्चात् संसार में कुछ प्राप्तव्य नहीं रह जाता। यह उपनिषद् का सन्देश है। गीता में भगवान् ने इसी बात को दूसरे रूप में कहा है :

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥'
(गीता : ९-२२)

—जो अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करता है, उसका योगक्षेम मैं देखता हूँ। अर्थात् भक्त की रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं।

मैंने मकड़ी के जाले से चर्चा प्रारम्भ की थी। मकड़ी कितना भी जाल फैलाये, किन्तु कभी-कभी ईश्वर की अहेतुकी कृपा कीट-पतङ्गों को भी उस जाल से मुक्त करा देती है। तब उनमें कौन-सी योग्यता तथा अधिकारिकता है! मुझे आज भी उस घटना का स्मरण है। एक दिन प्रातःकाल मैं अपनी कुटीर स्वच्छ कर रहा था। कोने में

मकड़ी का जाल फैला था। कुछ कीट-पतङ्ग उसमें फँसे थे। मैंने ध्यान से देखा—उस समय भी कुछ जीवित थे। गुरुदेव स्वामी चिदानन्द जी महाराज ने तुरन्त मुझे प्रेरणा की—'इन्हें मुक्त करो।' मैंने बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे, एक-एक करके जीवित पतङ्गों को मुक्त कर एक सुरक्षित स्थान पर रख दिया। बहुत समय बाद तक भी, वे मुक्त होने पर भी निश्चेष्ट वहीं पड़े रहे मानो बन्धन को उन्होंने सदा के लिए स्वीकार कर लिया हो। यही दशा साधकों की है। गुरु-कृपा होने पर भी वे उसका अनुभव नहीं करते वरन् स्वयं को बद्ध मान कर जीवन नष्ट कर देते हैं। पुरुषार्थ तो करना होगा।

गुरु में निष्ठा तथा गुरुवाणी में अविचल विश्वास ही साधक को लक्ष्य तक पहुँचाता है। गुरु हमारी जिज्ञासा का विषय तो है, किन्तु परीक्षा का विषय नहीं है। जिज्ञासा अपने बड़े से की जाती है तथा परीक्षा अपने से छोटे की ली जाती है। गुरु हमारी परीक्षा कर सकता है और कभी-कभी करता भी है, किन्तु साधक-शिष्य गुरु से मात्र याचना कर सकता है तथा अपने अज्ञान का निवारण कर सकता है।

गुरु-पूर्णिमा के पुनीत अवसर पर मुझे कुछ घटनाओं का स्मरण हो रहा है। परम गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के एक अनन्य भक्त श्री लक्ष्मीकान्त दवे ने एक संस्मरण सुनाया था। उन्होंने कहा : "एक बार गुरुदेव ने मेरी परीक्षा ली। मेरे पास केवल तीस रुपये थे। मैं गङ्गा-तट पर 'आनन्द कुटीर' के नीचे ध्यान में बैठा था। तभी एक साधु-वेशधारी आया। उसने कहा : 'मुझे पच्चीस रुपये चाहिए। तुम्हारे पास हैं, तुम मुझे दे दो।' सीधा प्रश्न था। रुपये भी थे। उसी दिन गुरुदेव ने सत्सङ्ग में 'दान' तथा 'ईश्वर-विश्वास' पर चर्चा की थी। एक ओर 'गुरुवाणी' में विश्वास का प्रश्न था और दूसरी ओर मन कहता था—केवल तीस रुपये हैं, अभी यहाँ से अहमदाबाद तक जाना है। टिकट तो था, किन्तु राह के अनेक व्यय थे। पाँच रुपये में कैसे होगा! किन्तु तभी एक क्षण में निश्चय कर लिया कि मेरी आवश्यकता को ईश्वर अवश्य पूरा करेगा और मैंने पच्चीस रुपये निकाल कर उन साधु-वेशधारी को दे दिये। वे प्रसन्न मुद्रा में कुछ कहते हुए वहाँ से तुरन्त अदृश्य हो गये। गुरुदेव का ही चमत्कार था कि ऋषिकेश से मथुरा होते हुए मैं अहमदाबाद पहुँच गया तथा शेष पाँच रुपये ज्यों-के-त्यों बच गये। कारण यह हुआ कि उन साधु-वेशधारी के जाते ही एक अपरिचित भक्त, जो कि आश्रम में ही ठहरे थे, मेरे निकट आकर कहने लगे—'सुना है, आप अहमदाबाद जा रहे हैं, मैं भी वहीं जाऊँगा, किन्तु मैं मथुरा होकर जाना चाहता हूँ और एक भक्त साथी की खोज में हूँ। यदि आप मेरे साथ चलें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।' मैंने स्वीकार कर लिया। अतः सारा मार्ग-व्यय वही अपरिचित भक्त करते रहे।" गुरु-कृपा तथा ईश्वर-विश्वास का इससे अधिक और क्या उदाहरण होगा! लक्ष्मीकान्त भाई की यह प्रथम ऋषिकेश यात्रा थी तथा प्रथम परीक्षा में वे सफल हो गये। उनके जीवन में परिवर्त्तन आ गया।

गुरुदेव श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के जीवन की भी अनेक घटनाएँ स्मरणीय तथा अनुकरणीय हैं। अनेक भक्त पूज्य महाराज श्री की अहेतुकी कृपा का अनुभव कर रहे हैं। यह अनधिकारी दास तो पग-पग पर और पल-पल में गुरुदेव की अहेतुकी कृपा का अनुभव कर रहा है। लगता है, जीवन में कोई कठिनाई ही नहीं है। साधन-भजन के लिए गुरुदेव की कृपा से ही नर्मदा-तट पर एकान्त में एक कुटीर की व्यवस्था हो गयी है। गुरुदेव ने ही एकान्त साधना के लिए सभी सुविधाएँ जुटवा दी हैं। यह उन्हीं की अहेतुकी कृपा है।

मुझे आज उस घटना का स्मरण आ रहा है,

जब वे बाबा (विनोबा जी) से मिलने जा रहे थे। मुझे बुला कर पूछा : 'तुम विनोबा जी से कब से नहीं मिले ?' मैंने कहा : 'लगभग १७ वर्षों से भेंट नहीं हुई।' उन्होंने पूछा : 'दर्शन के लिए चलोगे ?' मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। गुरुदेव जानते हैं कि मैं पूर्वाश्रम में बाबा के निकट 'सर्वोदय आन्दोलन' में कार्य कर चुका हूँ। उन्होंने तुरन्त मेरे लिए भी 'ट्रेन' में आरक्षण कराने का निर्देश दे दिया। पवनार आश्रम में बाबा से मिले। अनेक चर्चाएँ हुईं। बाबा ने गुरुदेव के विषय में श्री सुन्दरलाल बहुगुणा से पहले ही जानकारी प्राप्त कर ली थी तथा गुरुदेव की अनेकविध सेवाओं से परिचित थे, अत: बाबा पूज्य महाराज श्री से बड़े प्रभावित हुए। गुरुदेव ने भी बाबा से मिल कर बड़ा सन्तोष व्यक्त किया। दोनों ही प्रसन्न थे। मेरे भी कुछ पूर्व परिचित व्यक्ति वहाँ मिल गये थे।

अनायास गुरुदेव वहाँ अस्वस्थ हो गये। बाबा भी गुरुदेव को देखने आये। रात्रि को स्वास्थ्य अधिक खराब जान पड़ा, किन्तु गुरुदेव ने कोई चिन्ता व्यक्त नहीं की वरन् कहा : 'दवा मेरे पास है, तुम चिन्ता मत करो।' गुरुदेव रात भर सो नहीं सके। मुझे सेवा करने का अभ्यास नहीं है, अत: कुछ अधिक नहीं कर सका। फिर भी गुरुदेव ने मेरी बड़ी प्रशंसा की। मैं बड़ा सङ्कुचित रहा। अस्वस्थ रहने पर भी गुरुदेव ने 'पवनार आश्रम' के सभी कार्यक्रमों में भाग लिया तथा प्रवचन भी किया। स्वयं सेवा करने के लिए वे सदा तत्पर रहते हैं, किन्तु सेवा लेने में अत्यन्त सङ्कोची हैं। यह सन्त-स्वभाव है।

हमारे गुरुभाई तथा अनन्य गुरुभक्त कलकत्ता निवासी श्री रामनिवास गुप्ता जी से कुछ दिन पूर्व कलकत्ता में भेंट हुई। अपने निवास-काल में गुरुदेव के सम्बन्ध में अनेक चर्चाएँ हुईं तथा अनुभवों का आदान-प्रदान हुआ। रामनिवास जी कहने लगे : 'मैं तो १९६३ के बाद १९७२ में १० वर्ष बाद पहली बार आश्रम गया। गुरुदेव ने ही मानो खींच लिया।' और इस बार वे ऐसे पहुँचे कि अब वर्ष में २-३ बार भी आ जाते हैं तथा गुरुदेव से सदा का नाता जुड़ गया है।

गुरुदेव विदेश (दक्षिणी अफ्रीका) में थे। इधर आन्ध्र प्रदेश (भारत) में समुद्री तूफान उठा। सहस्रों प्राणी काल के गाल में चले गये। लाखों अनाथ तथा असहाय हो गये। नाना प्रकार के रोग फैलने लगे। एक वीभत्स दृश्य था। साक्षात् काल मानो मानव की असमर्थता पर अथवा उसकी कल्पित प्रगति और उपलब्धि के गर्व पर अट्टहास कर रहा था। सारा देश त्राहि-त्राहि कर उठा। गुरुदेव ने विदेश में समाचार पढ़ा। सन्त-हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने तुरन्त अपने विश्वासपात्र तथा कृपापात्र शिष्य को तुरन्त समयोचित सहायता का निर्देश किया। गुरुदेव की प्रेरणा होते ही रामनिवास जी ने समुद्री तूफान से पीड़ित लोगों की सेवा के लिए जो प्रशंसनीय तथा आश्चर्यजनक कार्य किया उसकी सराहना केवल सरकार ने ही नहीं की वरन् दिव्य जीवन सङ्घ के सदस्यों के लिए भी एक आदर्श बन गया।

गुरुदेव की पूर्ण कृपा उनपर है तथा रहेगी। हम सब शिष्यों तथा भक्तों पर भी गुरुदेव की अहेतुकी कृपा है जिसका निरन्तर अनुभव हम लोग कर रहे हैं। आज गुरु-पूर्णिमा के अवसर पर मैं संसार के समस्त भक्तों की ओर से गुरुदेव के चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उनके स्वास्थ्य की रक्षा करें जिससे कि वे दीर्घकाल तक हमारा सशरीर मार्ग-दर्शन करते रहें।

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था गुरोस्तु करुणां बिना॥

—*—

सूफी-साधना और भारतीय संस्कृति

— श्री कणदेव माहेश्वरी

आदि काल से ही भारतीय संस्कृति अपनी उदारता की आप मिसाल रही है। यदि सत्य या दो टूक बात कहें तो इस संस्कृति की यह विशेषता है कि यह किसी भी विचार को अपनी मौलिकता का ह्रास किये बिना ही स्थान देने में सक्षम है। भारत में जो विदेशी यात्री अरब, ईरान आदि से आये और उन्होंने जो यहाँ की प्रशंसा की उसके प्रभाव से सारा संसार यहाँ के प्रति आकर्षित हो गया। दसवीं शताब्दी में एक मुसलमान यात्री उलदूसी अरब से हमारे देश में आया और उसने यहाँ की प्रशंसा अपने उदार शब्दों में इस प्रकार लिखी : 'हिन्दू स्वभाव से न्याय-प्रिय है और वह कभी भी अपने स्वभाव से प्रतिकूल नहीं होता। इसी कारण दूसरे देशों के लोग यहाँ पर खिचे चले आते हैं।' केवल एक उलदूसी ही नहीं दूसरे कई मुसलमान यात्रियों ने भी यहाँ की सभ्यता, दर्शन और संस्कृति की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और इसी कारण कई सूफी सन्तों ने विदेशों से आकर भारत को ही अपनी साधना-स्थली के रूप में स्वीकार किया। सूफी-साधना का मूल-मन्त्र यह है कि मानव-जीवन का उद्देश्य अपने अहं-भाव को समाप्त करना है और जब अहं-भाव समाप्त हो जाता है तो राग-द्वेष बचता ही नहीं और ऐसी स्थिति में वह प्राणी मात्र में अपने प्रभु के दर्शन करता है और उस समय वह अपने प्रिय (महबूब) की कृपा का पात्र बन जाता है।

सूफी सन्तों में भी कई एक सम्प्रदाय हैं, जैसे कि चिस्ती, कादरी, नक्षबन्दी और शहरवर्दी; पर सबके मौलिक सिद्धान्त एक ही हैं। इन सन्तों में कई सन्त बहुत ही प्रसिद्ध हैं, जैसे हजरत निजामुद्दीन औलिया, सलीम चिस्ती, बाबा फरीद, शेख कमाल, शेख इब्राहिम, सरमद, बुल्लेशाह, शाह करीम, बाबा याकूत आदि। इन सभी सन्तों की साधना-पद्धति हिन्दू और मुसलमान दोनों ही को अपनी ओर आकर्षित करती रही। इनकी विचार-धारा जहाँ मुसलमानों से मेल खाती थी वहाँ हिन्दुओं के साथ भी उसका कोई विरोध नहीं था। सभी का मन, चाहे वह ब्राह्मण हो अथवा शेख, उनके प्रेम को देख कर उनकी ओर झुक जाता था। शाह इनायत तो मस्ती की दशा में एक बार कह उठते हैं :

'इल्मो बस करे ओ यार।
इक्को अलिफ होवे दरकार॥
इल्म ने उदे विच शुमार।
इक्को अलिफ तेरे दरकार॥'

इसी प्रकार बुल्लेशाह की सह-हरफी अद्भुत और बेजोड़ है। उसके अन्दर सीधी-सादी पञ्जाबी भाषा में जो वेदान्त और प्रेम की वाणी तथा पक्षपात-रहित बातें कही हैं वह संसार में ढूंढ़ने पर कठिनता से ही मिलेगी। एक स्थान पर बुल्लेशाह ने लिखा है :

'तुसी इल्म कितां पड़दे हो।
क्यों उल्टे माइने करदे हो॥
वे मोजिब इक्कां लड़दे हो।
कहिआ उलटा वेद पढ़ाया है॥
दूई दूर करो कोई शोर नहीं।
हिन्दू तुर्क कोई और नहीं॥
सब साध लखो कोई और नहीं।
घट-घट में आप लखाया है॥'

इसी प्रकार बाबा फरीद ने भी सिन्धी भाषा में मन की पवित्रता के बारे में बहुत-कुछ लिखा है।

आदि काल से ही इस पवित्रता के मार्ग पर चलने वालों को सांसारिक दुःख झेलने पड़े हैं, चाहे विश्वामित्र के यज्ञ करने की बात हो और

चाहे मीरा के लिए राणा का भेजा हुआ विष का प्याला हो; पर सूफी सन्तों को तो अपने विश्वास और अपने ईश्वर-प्रेम का मूल्य अपने प्राण देकर चुकाना पड़ा। मन्सूर को सूली पर चढ़ाया गया तो शम्सतबरेज़ की खाल उतारी गयी, सरमद का सिर काटा गया। यह सब हुआ। जिस समय सरमद का सिर काटने के लिए जल्लाद उसके पास आया तो सरमद कह उठा: 'मेरे प्यारे! मैं तुम पर प्राण न्यौछावर करता हूँ। तुम किसी रूप में भी आओ, मैं तुमको ही देखता हूँ।' लगता है कि सरमद के ही भाव टैगोर अपनी एक कविता में इस प्रकार व्यक्त करते हैं:

'प्रभु! मैंने तुमको देखा है कली के चटकने में, फूल के मुस्कराने में, उषा की लालिमा में, चाँद की चाँदनी में, अठखेलियाँ करती सरिता की लहरों में तथा चिड़ियों के चहचहाने में। प्रभु! तुम मुझको वह आँख दे दो जिससे मैं वेदना और पीड़ा में तेरा दर्शन करना सीख जाऊँ।'

यह सच है कि मुहम्मद गोरी और महमूद गजनवी जैसे आक्रमणकारियों ने भारत की संस्कृति पर बहुत गम्भीर आघात लगाये। इस बात की अलबरूनी ने, जो महमूद गजनवी के साथ भारत में आया था और एक जिज्ञासु बन कर १३ वर्ष इस देश में रहा तथा संस्कृत और भारत की कई भाषाएँ सीखीं, बड़े साहस के साथ स्पष्ट शब्दों में निन्दा की। मुसलमान जिस देश में भी गये वहाँ उन्होंने अपने धर्म और संस्कृति का इस भाँति प्रचार-प्रसार किया कि उस देश की अपनी संस्कृति लुप्त हो गयी। केवल यह भारतीय संस्कृति ही ऐसी है जो अपने अस्तित्व पर आँच आये दिये बिना इस विदेशी सभ्यता को भी आश्रय दिये हुए है। यहाँ पर गुरु नानक देव जी के समय में बुल्लेशाह और गुरु रामदास के जमाने में बाबा याकूब हुए। उन सभी के विचार आपस में बहुत मेल खाते हैं और एक-दूसरे का बहुत आदर करते हैं। सूफी सन्त मन्सूर का 'अनअलहक' का नारा 'अहं ब्रह्मास्मि' ही तो है।

—★—

श्रीमद्भगवद्गीता में पुरुषोत्तम का स्वरूप

—डा० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल, एम०ए० (हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृत, अर्थशास्त्र), साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार एल-एल.बी., पी-एच.डी.

परा और अपरा प्रकृति

'गीता' का पुरुषोत्तम तत्त्व वेद, वेदान्त और दर्शन के परम तत्त्व से पृथक् है। क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम—ये गीता के तीन तत्त्व हैं। क्षर उसकी अपरा प्रकृति है जिसको अधिभूत, क्षेत्र और अश्वत्थ भी कहा गया है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार—ये भगवान् की प्रकृति के आठ रूप हैं। अक्षरत्व उसकी परा प्रकृति है जिसको कि अध्यात्मा, पुरुष तथा क्षेत्रज्ञ भी कहा जाता है।

अनन्त ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकाशित प्रकृति-पुरुष उस पुरुषोत्तम की अपरा और परा प्रकृतियाँ हैं। उसकी यह अपरा प्रकृति जड़ है और परा प्रकृति चेतन। इन दोनों जड़-चेतन के संयोग से ही इस जगत् की उत्पत्ति हुई है।

साङ्ख्य और वेदान्त से भिन्न सृष्टि-क्रिया

किन्तु 'गीता' की यह सृष्टि-क्रिया साङ्ख्य और वेदान्त की अपेक्षा भिन्न है। साङ्ख्य में प्रकृति-पुरुष को विपरीत धर्म वाले दो तत्त्व माना गया है। वेदान्त में भी व्यावहारिक दृष्टि से प्रकृति-पुरुष की यही सत्ता मानी गयी है; किन्तु

पारमार्थिक दृष्टि से वेदान्त एक ही ब्रह्म को मानता है।

१. पुरुषस्य प्रकृतेश्च संयोगेन् सृष्टिः

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥
(साङ्ख्यकारिका : २१)

२. प्रकृतेरेव वस्तुतो बन्धमोक्षौ, न पुरुषस्य

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति
कश्चित् ।
संसरति बध्यतेमुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ॥
(साङ्ख्यकारिका : ६२)

प्रकृति और पुरुष मूल-तत्त्व के प्रकाशक मात्र

साङ्ख्य और वेदान्त की अपेक्षा 'गीता' के प्रकृति-पुरुष में भिन्नता है। यद्यपि 'गीता' के अनुसार भी प्रकृति-पुरुष के संयोग से जगत् की उत्पत्ति हुई है; किन्तु वे दोनों दो नहीं, एक ही हैं। गीता के अनुसार प्रकृति और पुरुष परम तत्त्व नहीं; बल्कि वे मूल-तत्त्व के प्रकाशक मात्र हैं। गीता में इस जगत् को भगवान् की प्रकृति कहा गया है इसलिए जगत् भगवान् का विवर्त्त तथा परिणाम न होकर उसमें भगवान् ही व्याप्त हैं। यह जगत् भगवान् का नित्य लीलाक्षेत्र है। जगत् का नित्य अस्तित्व है; क्योंकि वह लीलामय भगवान् की अभिव्यक्ति है।

इसी सिद्धान्त को साकार करने में कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदायों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। भागवत धर्म का मूलाधार यही सिद्धान्त है। वैष्णव-जगत् इस सिद्धान्त को मानते हुए उस पुरुषोत्तम की लीलाओं की अभिव्यक्ति का दर्शन कर रहा है।

श्रीकृष्ण ही पुरुषोत्तम हैं

किन्तु जगत् की अपेक्षा भगवान् व्यापक हैं। जगत् उनका एक अंशमात्र है। वह अनन्त, अखण्ड, असीम और अजेय है। गीता के सातवें, आठवें, दसवें और ग्यारहवें अध्यायों में अक्षर ब्रह्म पुरुषोत्तम की शक्तियों, स्वरूपों और लीलाओं का विशद चित्रण किया गया है। ये पुरुषोत्तम स्वयमेव श्रीकृष्ण ही हैं; क्योंकि गीता में उन्होंने स्थान-स्थान पर उत्तम पुरुष के रूप में अपनी ही विभूतियों को अभिव्यक्त किया है।

निर्गुण और सगुण

गीता के पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण निर्गुण, सगुण, निराकार तथा साकार सभी कुछ हैं। प्रकृतिजन्य गुणों का अभाव होने पर वे 'निर्गुण' हैं और लीलामय होने के कारण 'सगुण' हैं। गीता का पुरुषोत्तम अखण्ड तत्त्व है; किन्तु अपनी लीला-शक्ति प्रकृति के द्वारा उन्होंने बहुरूप धारण किये हैं। यही एकत्व और अनेकत्व है; एकत्व ब्रह्म-रूप में और अनेकत्व उनके प्रकृतिरूप में।

क्षर लीलामय स्वरूप

यह विश्व-लीला भगवान् की परमा प्रकृति है। अपने आनन्द के लिए उन्होंने प्रकृति के द्वारा अपने को नाना रूपों में प्रकट किया है। यदि भगवान् की इस जीव-लीला या विश्व-लीला को देखा जाय तो ज्ञात होता है कि वे अनेक हैं, सुखी-दुःखी हैं, जन्म-मृत्यु के वश में हैं और ससीम हैं। यह भी भगवान् की एक अवस्था है जिसको भगवान् का 'क्षर' रूप कहा गया है और जिसे वे अपने भक्तों के लिए धारण करते हैं।

अक्षर

किन्तु उनका एक रूप इससे भी बढ़ कर है जिसे 'अक्षर' कहते हैं। इस अवस्था में भगवान् प्रकृति से सर्वथा अलग रहते हैं। इस अवस्था में भगवान् द्रष्टा, उदासीन, विमुक्त और स्वाधीन होते हैं। यह सारी संसार-लीला उस समय बन्द हो जाती है। यह उनका निर्गुण रूप है।

दोनों रूप

भगवान् के उक्त दोनों रूपों को संक्षेप में कहा

जाय तो कहना चाहिए कि बद्ध जीव की अवस्था का नाम 'क्षर' और शान्त, निर्गुण ब्रह्म की अवस्था का नाम 'अक्षर' है।

तीसरा रूप पुरुषोत्तम

गीता में भगवान् के इन दोनों रूपों (क्षर और अक्षर) का भलीभाँति दिग्दर्शन हुआ है; किन्तु इन दोनों के अतिरिक्त उनका तीसरा रूप इन दोनों से श्रेष्ठ और सर्वोच्च है जिसके अन्दर क्षर और अक्षर, दोनों समा जाते हैं। भगवान् के उस रूप का नाम है 'पुरुषोत्तम।' यह अवस्था भगवान् की निर्गुण और सगुण, दोनों अवस्थाओं से संयुक्त है। क्षर के रूप में भगवान् विश्व-लीला में एकाकार हैं, अक्षर-रूप में वे अपना ही लीला-रूप देख रहे हैं और पुरुषोत्तम रूप में वे अपनी प्रकृति को परिचालित करके इस विश्व-लीला को सार्थक, सम्मोहक भी बना रहे हैं। यह लीला कोई दूसरी नहीं, भगवान् के ही स्वरूप-विकास की लीला है, माया नहीं, मिथ्या नहीं। इस सम्बन्ध में भी 'गीता' का साङ्ख्य और वेदान्त से मत-भेद है।

तीनों रूप

गीता के पन्दरहवें अध्याय के सोलहवीं, सतरहवीं तथा अठारहवीं संख्या के श्लोकों में भगवान् ने अपने इन तीनों रूपों को स्वयं ही समझाया है। उन्होंने अर्जुन से कहा है: 'हे गुडाकेश! मैं सम्पूर्ण भूतों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से अवस्थित आत्मा हूँ। इस संसार में 'क्षर' (नाशवान्) और 'अक्षर' (अविनाशी) दो तरह के पुरुष हैं। उनमें सम्पूर्ण भूत-समुदाय क्षर और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर कहलाता है। उत्तम पुरुष (पुरुषोत्तम) इन दोनों से भिन्न है, जो परमात्मा कहा गया है।'

ब्रह्म की प्राप्ति के अनन्तर उनकी 'पराभक्ति' प्राप्त होती है और उस पराभक्ति के द्वारा उनका वास्तविक स्वरूप देखा जा सकता है। भगवान् ने कहा है: 'क्योंकि मैं क्षर से अतीत और अक्षर से भी उत्तम हूँ। इसलिए लोक तथा वेद में मैं 'पुरुषोत्तम' नाम से प्रसिद्ध हूँ।'

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
(गीता : १५-१८)

यही गीता का पुरुषोत्तम तत्त्व है जिसकी व्याख्या स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से अपने अनन्य भक्त अर्जुन के प्रति की है।

—o—

'विश्व के समस्त व्यापारों के साथ कटुता की विद्यमानता इस बात की साक्षी है कि उन तक पहुँचने के सामान्य ढङ्ग में कुछ-न-कुछ त्रुटि है। क्लेश, व्याधि तथा मृत्यु जीवन-योजना के महान् अभाव के सूचक हैं। धन्य है उसको, जो अपनी ही परछाईं के पीछे दौड़ता है। सांसारिक पदार्थों से आनन्द पाने का प्रयास भी वस्तुतः इसी के सदृश है। नश्वर पदार्थों में आस्था रखना संसार की महान् भूल है।'

—स्वामी शिवानन्द

जननी ! जीवन जगमग ज्योतित कर दे ।
आर्जव से आपूरित अन्तः कर दे ।।
विराट् विश्व - बन्धुता का विलयन कर दे ।
तममय मग आलोकित कर दे ।।

*

तम की प्रस्तर कारा ध्वस्त कर दे ।
निर्मल ज्ञान की निर्भर धारा उद्वेलित कर दे ।।
मानव में माँ ! मृदुता का मधुमिश्रण भर दे ।
भारती ! अपने प्रेमी भक्तों में भव्यता भर दे ।।

माँ

— श्री कृष्णस्वरूप आनन्दी —

परमाध्यक्ष स्वामी जी का सन्देश :

'योग-वेदान्त' के पाठकों तथा दिव्य जीवन सङ्घ के सदस्यों की सेवा में

ज्योतिर्मय अमर आत्मन् !
सत्य के प्रिय जिज्ञासुओ !

भगवान् को नमस्कार है। भगवत्कृपा तथा गुरुदेव स्वामी शिवानन्द के अन्यतम आशीर्वाद आप पर बने रहें ! पावनी गङ्गा माँ के तट पर अवस्थित गुरुदेव के पवित्र धाम, शिवानन्दाश्रम में वापस आने पर आप सबका अभिवादन करते हुए मुझे प्रसन्नता है। मैं आप लोगों के सुख, शान्ति, सुस्वास्थ्य तथा आपके सभी कार्यों में सफलता की कामना करता हूँ ! ९ नवम्बर, १९७७ से ७ जून, १९७८ तक गत इन आठ महीनों में गुरुदेव के इस सेवक ने सेवा के लिए कई देशों में पड़ाव किया तथा वहाँ के जिज्ञासुओं, साधकों तथा भगवद्भक्तों को श्री गुरुदेव के सन्देश तथा उपदेश में, शान्ति तथा प्रकाश (ज्ञान) में सहभागी बनाया। दिव्य जीवन के आदर्शों तथा योग और वेदान्त के मूल्यवान् सिद्धान्तों को उन तक पहुँचाने की उनकी सच्ची पुकार का उत्तर देने तथा उनके अनुरोध पर अनुकूल अनुक्रिया करने पर मुझे सन्तोष रहा है। इन सच्चे भक्तों तथा अध्यात्म-पथ के जिज्ञासुओं की विशुद्ध आकांक्षा तथा आध्यात्मिक क्षुधा ही गत वर्ष उनके योग-विद्यालय की स्थापना के २१वें वार्षिकोत्सव के विशेष कार्यक्रम में सम्मिलित होने तथा उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिए शिवानन्द-योग-विद्यालय, जोहान्सवर्ग (दक्षिणी अफ्रीका) का निमन्त्रण स्वीकार करने के मेरे निश्चय में प्रमुख निर्णायक तत्त्व था। निश्चय ही, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में मुझे सक्षम बनाने में भगवान् तथा गुरुदेव बहुत ही दयालु रहे। इसके लिए मैं चिर कृतज्ञ हूँ। यह सेवक इस अवधि में मोम्बासा, नैरोबी, अक्रा, आल्स्ट, कोल्न (पोर्जईल), पैरिस तथा बेरूत की अपनी दिव्य जीवन की

शाखाओं में गया। अन्यच्च उसे अफ्रीका के हिन्दू मठ के स्वामी घनानन्द, अपनी गुरुबहन माता हृदयानन्द स्वामी जो, स्वामी शङ्करानन्द जी महाराज तथा श्री स्वामी ललितानन्द माता जी से क्रमशः अक्रा, पेरिस, ग्रालस्ट तथा बेरूत में मिलने का आनन्दमय अवसर प्राप्त हुआ। दुबाई में रह रहे कतिपय प्रभु के प्रिय भक्तों के बहुत ही हार्दिक तथा आग्रहपूर्ण अनुरोध पर भारत वापस आने से ठीक पूर्व मेरा अन्तिम पड़ाव दुबाई था। वहाँ के भारतीय समुदाय ने उस स्थान के एक प्रख्यात नागरिक तथा व्यवसायी लखा लल्ला जी की कृपापूर्ण उदारता तथा आतिथ्य से गुरुदरबार तथा हरिनारायण-मन्दिर में दो या तीन सत्सङ्गों तथा आस्टोरिया के बड़े महाकक्ष में एक सार्वजनिक भाषण की व्यवस्था कर रखी थी। जिन भक्तों ने इस उष्ण तथा बालुकामय नगर में हमारे पाँच दिवसीय आवास-काल में मेरी तथा मेरे साथी एलियास एल हयेक की देखभाल की, उन सबका मैं कृतज्ञ हूँ।

मैं वर्ष के इस काल में उत्तरी भारत की गर्मी से बहुत ही भयभीत हो रहा था तथा आश्चर्य कर रहा था कि यह शरीर इस कठिन परीक्षा को क्योंकर झेल सकेगा। भगवान् दयालु रहे तथा ७ जून को बम्बई पहुँचने पर वर्षा ने मेरा स्वागत किया। इस सेवक के दिल्ली पहुँचने से एक या दो दिन पूर्व दयावश वहाँ भी कुछ फुहारें पड़ी थीं और अब, ऋषिकेश ने तड़ित्मेघों, विद्युत् तथा वृष्टि के नियमित वर्षा वायु का परिधान धारण कर रखा है तथा घने श्वेत निम्नगामी मेघ उपत्यकाओं में नीचे उतर कर चतुर्दिक् से हिम-शिखरों को आच्छादित कर रहे हैं। गङ्गा माँ पूरे जोरों के साथ प्रवाहित हो रही है। हिमानी जल हिम-शीत-सा है तथा पर्वतों के बालुकामय साद से भरा हुआ है। बहुत ही गर्म तथा उमस है, किन्तु सौभाग्यवश उतनी उष्णता नहीं है जितनी कि यह सेवक आशङ्का कर रहा था। प्रभो, आपको धन्यवाद। प्रिय गुरुदेव ! आपको भी अनेकानेक धन्यवाद। यह शरीर अस्वस्थ हुए बिना गर्मी सहन कर सका है।

प्रिय पाठक ! इस बार मैं इस पत्र को संक्षेप में लिख रहा हूँ। २० जुलाई को पवित्र व्यास-पूजा-दिवस पर आत्मपरिष्कार तथा आध्यात्मिक साधना-काल के लिए तैयार हों। सच्चे शिष्यत्व के गम्भीरतर गर्भितार्थ का भलीभाँति मनन करें। त्याग-मार्ग के साधकों तथा जिज्ञासुओं के आदर्शों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें। संन्यास-जीवन के मौलिक सिद्धान्तों पर सच्चाई से चिन्तन करें। अनुभव करें कि यह ब्रह्मचर्य, अकिञ्चनता तथा आज्ञाकारिता का जीवन है, कि यह करुणा, सत्यशीलता तथा पवित्रता का मार्ग है और यह कि आपका जीवन 'सरल जीवन और उच्च विचार' पर आधारित है। आपके प्रत्येक विचार, वाणी और कर्म को भद्रता तथा उदारता चिह्नित करें। भद्र बनें। अपने को कर्म तथा प्रतिक्रिया की क्षुद्रता, तुच्छता तथा लघुता से सदा के लिए मुक्त कर लें। रोष तथा प्रतिकार की भावना से ऊपर उठें तथा अपने को सच्चा भगवद्भक्त प्रमाणित कर दिखायें। दयालुता, करुणा तथा कोमलता के उदात्त आध्यात्मिक गुणों से ज्योतित हों। इस भाँति दिव्यता को प्रतिबिम्बित करें। गुरुतत्त्व को प्रतिबिम्बित करें। दिव्यता विकीर्ण करें। अपने अव्यवहित पर्यावरण में और तत्पश्चात् समस्त जगत् में शान्ति और आनन्द लायें। महर्षि व्यास तथा सभी ब्रह्मविद्या गुरुओं की कृपा तथा उनका आशीर्वाद आप पर रहे तथा आपको सच्चा योगी, भक्त, वेदान्ती तथा साधक बनाये ! आपके चरित्र तथा व्यक्तित्व का ऐसा दिव्यीकरण, आपके जीवन तथा उसकी प्रवृत्तियों का ऐसा अध्यात्मीकरण ही सच्ची आराधना है, महत्तम तथा सर्वोत्तम

गुरु-पूजा है। हरि ॐ। इस माह, जुलाई '७८ की पूर्णिमा को पवित्र गुरु-आराधना तथा पावन व्यास-पूजा के अवसर पर मेरा प्रेम तथा सद्कामनाएँ स्वीकार करें।

कृपा की आप पर वर्षा हो! आशीर्वादों की आप पर वृष्टि हो तथा आपको परम भाग्यशाली बनायें!

भवदीय प्रार्थनामय,
स्वामी चिदानन्द
ॐ
गुरुदेव के श्री चरणों में

समाचार एवं सूचनाएँ

आश्रम - समाचार

शिवानन्दाश्रम में श्री स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज का ५८वाँ जन्मदिवसोत्सव सम्पन्न

गुरुदेव के आश्रम के वरिष्ठ स्वामी श्रद्धेय श्री स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज का ५८वाँ जन्म-दिवस प्रमुखालय शिवानन्दाश्रम में २०-६-७८ को समयोचित ढङ्ग से मनाया गया। श्री विश्वनाथ-मन्दिर तथा गुरुदेव के समाधि-मन्दिर में स्वामी जी के उत्फुल्ल स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन, शान्ति, आनन्द तथा प्रकाश के लिए विशेष पूजा की गयी। इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर श्रद्धेय स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज को बधाई देने के लिए रात्रिकालीन सत्सङ्ग पूर्णतः समर्पित था। इसमें सभी वरिष्ठ स्वामी जनों ने भाग लिया। इस समारोह की अध्यक्षता करते हुए प० पा० श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज ने स्वामी जी के भद्र गुणों की विस्तार से चर्चा की तथा उनके समर्पण, निस्स्वार्थ सेवा, दृढ़ विश्वास तथा दिव्य जीवन के उद्देश्यों के हेतु पूर्ण आत्मसमर्पण के लिए उनकी भूरि-भूरि सराहना की तथा उन्होंने पञ्जाब में तथा उत्तरी भारत में अन्यत्र गुरुदेव के ज्ञान-यज्ञ में जो महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, उसका विशेष उल्लेख किया।

स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज ने इस अवसर पर अपने विषय में अभिव्यक्त की गयी सद्कामनाओं तथा मधुर भावनाओं के लिए स्वामी चिदानन्द जी महाराज तथा अन्य लोगों को धन्यवाद दिया। उत्सव आरती तथा प्रसाद-वितरण के अनन्तर लगभग ११ बजे रात्रि को समाप्त हुआ। ★

भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, रानीपुर, हरिद्वार में योगासन-शिविर

भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, रानीपुर, हरिद्वार के सहायक व्यवस्थापकों श्री एस० भाष्यम् तथा एम० भट्टाचार्य के व्यक्तिगत अनुरोध पर ११ मई से ४ जून, १९७८ तक योगासन, प्राणायाम तथा ध्यान के एक शिविर का सञ्चालन किया गया।

श्री स्वामी अध्यात्मानन्द जी ने, जिन्हें योग-वेदान्त आरण्य अकादमी की ओर से शिविर के सञ्चालन के लिए प्रतिनियुक्त किया गया था, ११ मई के सायङ्काल को मानव-जन्म की महत्ता,

उसका लक्ष्य तथा उसके प्राप्त करने की योग-विधि का वर्णन करते हुए उद्घाटन-भाषण दिया। भा० है० इ० लि० के प्रधान चिकित्सा-अधिकारी कर्नल बेन्स ने इस समारोह की अध्यक्षता की तथा अधिकारियों से योगिक-अनुशासन द्वारा अधिकतम लाभ उठाने का अनुरोध किया।

वास्तव में पाठ्यक्रम १२ मई के प्रातःकाल ४० अधिकारियों से आरम्भ हुआ; किन्तु बाद में माँग बढ़ी तथा स्वामी जी को तीन विभिन्न वृत्त-खण्डों में तीन अलग वर्गों का सञ्चालन करना पड़ा। सहायक व्यवस्थापक, वरिष्ठ अधिकारी तथा अभियन्ता प्रशिक्षार्थी पाठ्यक्रम में सम्मिलित हुए। स्वामी जी ने उन्हें शरीर को लचीला बनाने वाले आसनों, बैठ कर, लेट कर तथा खड़े होकर किये जाने वाले आसनों, शिथिलीकरण, प्राणायाम, योग-निद्रा, त्राटक, ध्यान, नेति, धौति, शङ्ख-प्रक्षालन आदि की शिक्षा दी। कुल मिला कर १४८ अधिकारी योग-शिक्षा में सम्मिलित हुए।

भा० है० इ० लि० के अपने आवास-काल में स्वामी जी ने भा० है० इ० लि० के अभियान्त्रिक प्रशिक्षण संस्थान में योगासन, प्राणायाम आदि के शरीर तथा देह-व्यापारीय मूल्यों पर प्रवचन किया।

३ जून के सायङ्काल को अभियान्त्रिक प्रशिक्षण संस्थान के हरित प्राङ्गण में योगासनों का प्रदर्शन हुआ जिसे महाव्यवस्थापक (प्रशासकीय) श्री श्रीनिवासन, प्र० चि० अ० तथा उस नगर के अन्य अधिकारियों ने देखा और उन सबने पाठ्यक्रम के प्रशिक्षण के परिणाम पर अपना महान् सन्तोष व्यक्त किया। श्री श्रीनिवासन जी ने कहा कि वे तथा उनका कर्मचारी-वर्ग, जब कभी भी आवश्यकता होगी, स्वामी जी तथा दिव्य जीवन सङ्घ से भा० है० इ० लि० परिवार को अपनी मूल्यवान् सेवाएँ प्रदान करने के लिए प्रार्थना करेंगे और उन्होंने अपनी यह आशा भी व्यक्त की कि वे अभियान्त्रिक प्रशिक्षण संस्थान, भा० है० इ० लि०, हरिद्वार में योग-वर्ग को नियमित रूप से रखना चाहते हैं।

स्वस्तिवाचनिक समारोह शिवानन्दाश्रम में श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज को समाधि पर ४ जून, '७८ रविवार को प्रातःकाल आयोजित किया गया जिसमें भा० है० इ० लि० के १५८ लोग उपस्थित हुए।

कार्यक्रम स्तुतिपरक प्रार्थनाओं से आरम्भ हुआ और तब भा० है० इ० लि० के आफिसर क्लब के सचिवों, श्री नटराजन तथा श्री ओ० पी० निगम ने धन्यवाद दिये तथा सङ्घ के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि वे (योग-वर्ग के एक विद्यार्थी) श्री पाल के सुन्दर पथ-प्रदर्शन में योग-वर्गों को नियमित रूप से चालू रखेंगे।

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज ने स्वस्तिवाचनात्मक भाषण दिया तथा श्री स्वामी माधवानन्द जी महाराज ने सम्मान्य जन-समूह को आशीर्वाद दिया।

श्रद्धेय स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज ने कहा: 'सङ्घर्ष सत्ता का नियम है। इसी भाँति कर्म भी सत्ता का नियम है। हम इस सङ्घर्ष में सभी दिशाओं से अगण्य शक्तियों अथवा विरोधियों से टकराते हैं। केवल बुद्धिमान् व्यक्ति ही उनका सामना कर उन पर विजय प्राप्त कर सकता है। जीवन यापन की यह कला योग है।

'योग मिलन है। किसके साथ किसका योग? यह जीव का परमात्मा के साथ मिलन है। हमने सुन रखा है कि योग अच्छी वस्तु है। ऐसा क्यों है? क्योंकि सापेक्ष निरपेक्ष बन जाता है, व्यष्टि समष्टि, विषय विषयी, संक्षेप में पूर्ण व्यक्ति बन जाता है। वर्त्तमान में हम परम सत्ता के अपखण्ड हैं। योग परम श्रेयस्—मोक्ष तक पहुँचने में हमारी सहायता करता है। सिद्धान्त में दी हुई विधियों से हमें आगे बढ़ना चाहिए तथा आन्तरिक रूपान्तरण लाने का प्रयास करना चाहिए। यह योग की कला है। हमारे व्यक्तित्व का एक पहलू अपने परिवर्त्तन होने वाले दृश्यों का सामना कर रहा है। इसे जान कर हमें पूर्ण बनने के लिए परम लक्ष्य की आकांक्षा करने का प्रयत्न करना चाहिए। ईश्वर पूर्ण है, वैसे मनुष्य भी पूर्ण है।

'मनोवैज्ञानिक रूप से हम केवल अंश हैं। योग इन अंशों को उस एक ही तानेबाने में लाने का प्रयास करता है जो कि सभी जीवों की समष्टि—भगवान् है। इस प्रकाश में, उस पूर्णता के लिए मेरे केवल एक पहलू को ही आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, वरन् मेरी पूर्ण सत्ता को उसकी माँग करनी चाहिए। यह ऐक्य योग है। हमारे समग्र व्यक्तित्व को उसकी माँग करनी चाहिए और वह प्रदान किया जायगा। भगवान् समग्रता है। वैसे ही हम भी समग्र हैं। अंश एक पूर्ण—अद्वैत सत्ता बन जाता है। अभ्यास की यह प्रक्रिया योग है।'

सर्वश्रेष्ठ छात्रों श्री शिव मनोज (कनिष्ठ-वर्ग), श्री एच० एम० सिद्दीकी (अधिकारी-वर्ग), श्री अरुण कुमार चौधरी (अभियन्ता प्रशिक्षार्थी-वर्ग) तथा श्रीमती सिन्हा (महिला-वर्ग) को पारितोषिक प्रदान किये गये तथा जो लोग योग-वर्ग में नियमित रूप से उपस्थित रहे, उन सबको प्रमाण-पत्र वितरित किये गये।

विश्व-प्रार्थना तथा विश्व-शान्ति के लिए प्रार्थना के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ। ★

शिवानन्दाश्रम में योगासन के वर्ग

सङ्घ के प्रमुखालय शिवानन्दाश्रम में प्रतिदिन प्रातःकाल बड़े सवेरे स्वामी कृष्णा के पथ-प्रदर्शन में चलने वाले वर्ग में भारत तथा विदेश के अनेक विद्यार्थियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। मई तथा जून, १९७८ के महीनों में इन वर्गों में उपस्थित होने वाले योग के विद्यार्थियों की सूची निम्नाङ्कित है :

पश्चिमी जर्मनी के मैरिया क्रीग, हेन्नेर हिल्डरगार्ड तथा हरमैन ब्राण्ट; इटली के ग्लोरिया जेस्फ्रो तथा ऐड्रियाना सेरी; पोलैण्ड के पीको वियाक; अमरीका के टेड स्टिकेल, विको नगेल, लेस्ली अलब्राइट तथा अन्ने फ्रीमैन; श्रीलङ्का के एस० दया; मलेशिया के एस० बालकृष्णन्; इंग्लैण्ड के गिल लायड् जोन्स, कैथलीन मिक्सटन, सूसी लायड् जोन्स, ओलीविया गिल्बर्ट तथा सूसन कैप्लान; कनाडा के लीने मोण्टमार्केट्ट, राब विट्टी तथा प्रसाद; आस्ट्रेलिया के डेसी पेट्री, जान पेट्री तथा स्वामी शङ्कराचार्य; फ्रांस के पिलास्ट्रे, विन्सेन्ट पोनसोट, डोलोरेस तथा अलेक्ज़ेण्डा; जापान के सुतोमू कत्सूमी; स्विट्ज़रलैण्ड के जार्ज जग्गी; ब्राज़ील के सर्ज़िओ सफ़ार; कोलम्बिया के अलैनो सैन्टोस तथा ओकारो सैन्टोस; स्पेन के शङ्कर चैतन्य; इज़राइल के ओनाट अमोरी तथा गिडयोन बेज़ाल्ड; भारत के राय अर्पणा, दिनेश कुमार, बलरामदास, कृष्णमोहन, रवि, राजाराम, विजय कुमार, सी० एन० हैम्बर, हिमांशु कुमार, सुरेन्द्र, भूपेन्द्र (जामी), कुमार, पनिकर विष्णु, भीम राजू तथा चावला। ★

पावन स्मृति में

हमें खेद के साथ यह सूचित करना पड़ रहा है कि प्रख्यात शिक्षाविद् तथा दिव्य जीवन सङ्घ की बीकानेर शाखा के उत्साही कार्यकर्त्ता प्रो० रामरतन अग्रवाल का गत २२ मई, १९७८ को निधन हो गया।

सच्ची लगन तथा निरन्तर पुरुषार्थ द्वारा किसी भी बाधा पर विजय प्राप्त की जा सकती है, इसका ज्वलन्त उदाहरण रहा है प्रो० रामरत्न अग्रवाल जी का जीवन। आपका जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के एक ग्राम में २ जनवरी, १९०१ को एक साधारण अग्रवाल परिवार में हुआ था। अभी आप मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ही पाये थे कि पिता की छत्रछाया आपके सिर से उठ गयी और अपने छः भाई-बहनों में ज्येष्ठ होने के कारण परिवार का सारा उत्तरदायित्व आपके कोमल कन्धों पर आ पड़ा; परन्तु इस विषम परिस्थिति में भी आप किञ्चित् भी विचलित नहीं हुए, आपने साहस और धैर्य को नहीं छोड़ा और ट्यूशन करके न केवल अपनी शिक्षा ही चालू रखी, वरन् अपने परिवार का निर्वाह भी किया।

सन् १९२४ में श्री रामरत्न अग्रवाल जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त महाराणा कालेज, उदयपुर में आचार्य नियुक्त हुए। इसी अवधि में आपने अपने छोटे भाई-बहनों की उच्च शिक्षा की भी व्यवस्था की। सन् १९२७ में प्रो० अग्रवाल ने अपने स्वावलम्बी जीवन में मुरादाबाद के एक प्रतिष्ठित परिवार की कन्या स्वर्णलता जी से दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित किया और उसी समय सन् १९२८ में आचार्य-पद पर बीकानेर में आसीन हुए। आपने दो वर्ष मेरठ तथा लखनऊ के कालेजों में प्रोफेसर रह कर शिक्षा के क्षेत्र में अपनी विद्वत्ता तथा निपुणता का परिचय दिया।

श्री रामरत्न जी विद्याप्रेमी तो थे ही। इसके साथ-साथ आपकी आध्यात्मिक रुचि का कारण सम्भवतः परिवार से विरासत में प्राप्त धर्मप्रेम था। कदाचित् इसी लिए आपने अपने पाठ का मुख्य विषय दर्शनशास्त्र चुना था। आपने अंग्रेजी साहित्य का भी गहन अध्ययन किया। आपका सामान्य ज्ञान इतना अधिक था कि उनसे दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति, साहित्य, कला आदि विषयों में से किसी भी विषय की प्रचुर जानकारी प्राप्त की जा सकती थी। अंग्रेजी भाषा के धुरन्धर विद्वान् होने के साथ-साथ आपको हिन्दी, उर्दू तथा फारसी भाषाओं का भी सम्यक् ज्ञान था।

आप एक आदर्श पिता और पति थे। आपने अपनी पत्नी (डा० स्वर्णलता अग्रवाल) को, जो विवाह के समय अधिक शिक्षित नहीं थीं, डाक्टर की पदवी तक शिक्षा दिलायी और अपनी पाँच पुत्रियों और दो पुत्रों को भी उच्च शिक्षा दी जिनमें से कई तो अमरीका में उच्च शिक्षा प्राप्त कर सम्मान्य पदों पर कार्य कर रहे हैं।

प्रो० अग्रवाल का भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम था। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त करने पर भी इनकी सन्तान तथाकथित आधुनिकता से कलुषित होने से बची रही। आप सच्चारित्र्य, प्राकृतिक साधनों तथा योगासनों द्वारा स्वास्थ्य-संरक्षण, सरल जीवन, अध्यात्मप्रेम तथा विद्या के लिए सच्ची लगन में दृढ़ आस्था रखते थे और इसका परामर्श आप अपने निकट सम्पर्क में आने वाले छात्रों को भी देते थे। यही कारण है कि आज जहाँ छात्रों तथा अध्यापकों के पारस्परिक सम्बन्ध कटु हो चले हैं वहाँ श्री अग्रवाल जी के प्रति इनके छात्रों में श्रद्धा, विश्वास तथा आत्मीयता की भावना दिखायी पड़ती है। इन्हीं दुर्लभ गुणों के कारण उन्हें अपने सहयोगी प्रोफेसरों

के हृदय में प्रेम तथा सम्मान का स्थान प्राप्त था। श्री अग्रवाल जी अपने आदर्श जीवन के लिए शिक्षा-जगत् में चिर-काल तक स्मरणीय बने रहेंगे।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। आप बाल्यकाल से अध्यात्मप्रेमी थे। बाद में वे अनेक सन्तों के सम्पर्क में आये। इनमें श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के व्यक्तित्व तथा उपदेशों से इतना अधिक प्रभावित हुए कि इस सम्पर्क को आपने आजीवन बनाये रखा। उनके सन्देश को स्थानीय जनता तक पहुँचाने के विचार से आपने अपनी धर्मपत्नी डा० स्वर्णलता अग्रवाल (भूतपूर्व प्रिंसिपल डूंगर कालेज) जी के सहयोग से बीकानेर में दिव्य जीवन सङ्घ की एक शाखा स्थापित की जिसके माध्यम से वे लोगों को दिव्य जीवन के आदर्शों पर चलने की प्रेरणा देते रहते थे। यही नहीं आपने इस संस्था के प्रकाशनों का अंग्रेजी से हिन्दी तथा हिन्दी से अंग्रेजी में अनुवाद करने में डा० स्वर्णलता अग्रवाल जी की पर्याप्त सहायता की। उनके निधन से श्रीमती अग्रवाल जी ने न केवल अपना जीवन-साथी सदा के लिए खो दिया है अपितु दिव्य जीवन के प्रचार में सदा आगे बढ़ कर हाथ बटाने वाले एक सहयोगी से भी वे वञ्चित रह गयी हैं। निश्चय ही बीकानेर शाखा के लिए यह अपूरणीय क्षति है।

हम दिवङ्गत आत्मा के शोक-सन्तप्त परिवार के सभी सदस्यों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करते हैं तथा भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि प्रभु श्री अग्रवाल जी की आत्मा को अपने श्रीचरणों में स्वीकार करें।

—दिव्य जीवन सङ्घ

आराधना के अवसर पर

१ जुलाई, १९७८ से ३० सितम्बर, १९७८ तक

संस्था के समस्त प्राप्य प्रकाशनों पर विशेष रियायत

सभी ग्राहकों के १०.रु० से ऊपर के सभी आर्डरों पर २५ प्रतिशत रियायत।

इसके अतिरिक्त निम्नाङ्कित रियायतें दी जायेंगी :—

(१) प्रामाणिक पुस्तक-विक्रेताओं को १० प्रतिशत,

(२) अन्य लोगों को, यदि आर्डर १०१ रु० या इससे अधिक का हो, ५ प्रतिशत, तथा

(३) भारत-स्थित दिव्य जीवन सङ्घ की मान्य शाखाओं को १५ प्रतिशत।

पैकिङ्ग तथा डाक-व्यय आदि अतिरिक्त

नवीनतम सूचीपत्र तथा अन्य विशेष जानकारी के लिए कृपया निम्नाङ्कित पते पर लिखिए :—

दिव्य जीवन सङ्घ,

शिवानन्द पब्लीकेशन लीग,

पो० शिवानन्दनगर, जिला टिहरी-गढ़वाल, (उत्तर प्रदेश), हिमालय। पिन : २४९ १९२.

नोट:—उपर्युक्त रियायत केवल भारत के अन्दर के आर्डरों पर ही दी जायगी।

हिन्दी में प्राप्य दिव्य जीवन सङ्घ की पुस्तकें

१—आलोक-पुञ्ज-स्वामी शिवानन्द के सर्वतोमुखीपूर्ण जीवन के विविध पहलुओं पर विश्लेषणात्मक प्रकाश डालने वाली अमूल्य पुस्तक रु० ८-००

२—उत्तर के शैल-शिखरों से—व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को संस्पर्श करने वाले विषयों पर प्रेरणादायी तथा उद्बोधक प्रवचनों का अनुपम संग्रह रु० ३-००

३—कठोपनिषद् के रहस्य—कठोपनिषद् के आधार पर मानवीय-चेतना के क्रमिक उद्घाटन का अधिकारपूर्ण प्रामाणिक विशद विवेचन रु० ५-००

४—क्रियायोग—कुण्डलिनी-शक्ति की अभिव्यक्ति में सहायक क्रिया-योग की प्रमुख सात क्रियाओं का सचित्र विवरण रु० ५-००

५—चिदानन्द-चन्द्रिका—आध्यात्मिक साधना के विविध अङ्गों पर प्रकाश डालने वाले स्वानुभूत प्रेरणादायी आध्यात्मिक विचारों का अमूल्य सङ्कलन रु० २-५०

६—जीवन में सफलता के रहस्य—जीवन की सफलता के साङ्गोपाङ्ग, सरल और अनुभूत साधनों का सुन्दर और व्यावहारिक प्रतिपादन रु० १४-००

७—ज्योतिपथ की ओर—विविध लेखों में अध्यात्म-पथ की ओर अग्रसर होने के लिए अन्यत्र अलभ्य व्यावहारिक तथा उपादेय सूचनाएँ रु० ८-००

८—दिव्योपदेश—महामनीषी स्वामी शिवानन्द जी महाराज की स्फुट सदुक्तियों का अनुपम सङ्कलन रु० १-५०

९—पूर्णता की ओर—जीवन को अपूर्णता से पूर्णता की ओर अग्रसारित करने वाले प्रभावशाली तथा सफलता-प्रदायक साधनों का युक्तियुक्त विवेचन रु० २-००

१०—प्रार्थना-मञ्जरी--सन्ध्याविधि, जपोपयोगी मन्त्र, श्लोक, आरतियाँ, नित्य स्मरणीय स्तोत्र भजन-कीर्त्तन, लघु पूजाविधि, गीता के श्लोक, उपनिषदों के मन्त्र आदि नित्य कर्मोपयोगी विषयों का सुन्दर सङ्कलन रु० ५-००

११—भगवान् का मातृरूप--मातृभावाश्रित पूजा-पद्धति का नवीन दृष्टिकोण से प्रतिपादन रु० ४-००

१२—भारतीय संस्कृति तथा समन्वय की रूपरेखा—प्रागैतिहासिक काल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त भारतीय संस्कृति का ऐतिहासिक विकास तथा विश्व के समस्त प्रमुख धर्मों की संक्षिप्त रूपरेखा रु० ७-००

विद्यार्थियों के लिए रु० ५-००

१३—महान् जीवन की पथ-प्रदर्शिका—यह पुस्तक दिव्य जीवन यापन के लिए प्रेरणा प्रदान करती, तत्सम्बन्धी जानकारी देती तथा मार्ग की सम्भावित कठिनाइयों से सावधान करती है रु० ५-००

१४—मानवता से—सामान्य रूप से सभी मानवों के लिए और विशेष रूप से आध्यात्मिक साधकों के लिए अतीव उपयोगी विषयों पर दिये गये सन्देशों का सङ्कलन रु० २-००

१५—मुक्ति-पथ—राजयोग का पातञ्जल योग-दर्शन पर आधारित वैज्ञानिक विवेचन रु० ६-००

१६—शिवानन्द-आत्मकथा—पूर्णत्व प्राप्त एक सन्त, योगी तथा महामनीषी के व्यक्तित्व के विविध अङ्गों के क्रमिक प्रस्फुटन का विवेचनात्मक विवरण उनके अपने शब्दों में रु० ७-००

१७—समन्वय योग-प्रदीपिका—एक योग के अनुभवी लेखक द्वारा आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, क्रियाएँ, योगनिद्रा प्रभृति योग के सभी पक्षों के विवेचन से समन्वित शिक्षाप्रद सुबोध, सरस, सुगम तथा सचित्र सर्वाङ्गीण पुस्तक रु० १०-००

१८—समाज-परिवर्तन के शाश्वत मूल्य—जीवन के विभिन्न क्षेत्रों तथा विविध स्तर के लोगों के लिए अध्यात्म समन्वित उपदेश रु० २-५०

१९—सर्वगुण सम्पन्न श्री स्वामी चिदानन्द—एक महान् सन्त के जीवन की प्रेरणादायी घटनाओं के संस्मरण तथा आध्यात्मिक सुविचारों का सङ्कलन रु० ३-००

पता : दिव्य जीवन सङ्घ, शिवानन्द पब्लीकेशन लीग,
पो० शिवानन्दनगर, जिला टिहरी-गढ़वाल, (उ० प्र०) पिन : २४६ १९२.

योग-वेदान्त-आरण्य-अकादमी, (दिव्य जीवन सङ्घ), शिवानन्दनगर के लिए श्री स्वामी चन्द्रशेखरानन्द सरस्वती द्वारा सम्पादित और प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त-आरण्य-अकादमी-प्रेस', पो०आ० शिवानन्दनगर, (जिला टिहरी-गढ़वाल, हिमालय), उ०प्र०, पिन : २४९/१९२ में मुद्रित।